शैक्षणिक

संदर्भ

वर्ष: 13 अंक 73 (मूल क्रमांक 130)
सितम्बर-अक्टूबर 2020 मूल्य: ₹ 50.00

सम्पादन
राजेश खिंदरी
माधव केलकर

सहायक सम्पादक
पारुल सोनी
कोकिल चौधरी

सम्पादकीय सहयोग
विनता विश्वनाथन
सुशील जोशी
उमा सुधीर

आवरण
राकेश खत्री

वितरण
झनक राम साहू

सहयोग
कमलेश यादव

शैक्षणिक

संदर्भ

वर्ष: 13 अंक 73 (मूल क्रमांक 130)
सितम्बर-अक्टूबर 2020

मूल्य: ₹ 50.00

एकलव्य फाउण्डेशन
जमनालाल बजाज परिसर
जाटखेड़ी, भोपाल-462 026 (म.प्र.)
फोन: +91 755 297 7770, 71, 72, 73
www.sandarbh.eklavya.in
सम्पादन: sandarbh@eklavya.in
वितरण: circulation@eklavya.in

अब *संदर्भ* आप तक पहुँचेगी रजिस्टर्ड पोस्ट से इसलिए सदस्यता शुल्क में वृद्धि की जा रही है।

सदस्यता शुल्क	एक साल (6 अंक)	तीन साल (18 अंक)	आजीवन
	450.00	1250.00	8000.00

मुखपृष्ठ: पत्तियों में फ्रेक्टल्स: गणितीय भाषा में ऐसी आकृतियों या वस्तुओं को फ्रेक्टल कहा जाता है जिनके किसी भी छोटे हिस्से को बड़ा करके देखा जाए तो हम पाएँगे कि वह आकृति हर अनुमाप पर अपने आप को दोहराती है। क्या फ्रेक्टल्स मात्र एक गणितीय अवधारणा है? इस बारे में पढ़ते-समझते हैं विस्तृत लेख के साथ, पृष्ठ 05 पर ।

पिछला आवरण: धूप सेंकता अजगर: केवलादेव नेशनल पार्क, राजस्थान में स्थित यूनेस्को द्वारा घोषित संरक्षित इलाका, प्रवासी पक्षियों के लिए स्वर्ग है। यद्यपि यह पक्षियों के लिए ज़्यादा प्रसिद्ध है परन्तु यहाँ सर्दियों की दोपहर में आपको धूप सेंकते हुए अजगर भी मिल जाएँगे। राजस्थान की सर्दियाँ और गर्मियाँ भीषण होती हैं। ये अजगर अपने शरीर का तापमान कैसे बनाए रखते हैं और इनकी कुछ खास विशेषताओं को जानते हैं सम्बन्धित लेख में, पृष्ठ 25 पर।

यह अंक त्रिवेणी एजुकेशनल ट्रस्ट के वित्तीय सहयोग से प्रकाशित किया जा रहा है।

LINKS Cover 1. https://dea8af41-a-62cb3a1a-s-sites.googlegroups.com/site/elhasanbazziallenrankin/fractals-found-in-nature/artichoke.jpg?
Cover 3. http://www.flowersofindia.net/catalog/slides/Bottle%20Gourd.html
Cover 4. https://piecesofafrica.com/african-rock-python/

फूलों का खिलना और मुरझाना

अक्सर हम पेड़-पौधों की उम्र के बारे में चर्चा करते हैं जैसे एकवर्षी और बहुवर्षी पौधे। पेड़ों की उम्र के साथ कभी-कभी पत्तियों की उम्र की भी चर्चा होती है जिसके आधार पर जंगलों को पतझड़ी एवं सदाबहार जंगलों में बाँटा जाता है। परन्तु पेड़-पौधों के सबसे महत्वपूर्ण एवं आकर्षक अंग यानी फूलों की उम्र की चर्चा कम ही होती है।

विभिन्न अध्ययनों से समझ में आया है कि फूलों की उम्र के सन्दर्भ में बहुत सारे कारक काम करते हैं। फूलों की आयु या दीर्घायु को समय के अनुरूप परिभाषित किया जा सकता है। इस अन्तराल में फूल खुला और कार्यात्मक रहता है, और पौधों की प्रजनन सफलता के लिए यह एक महत्वपूर्ण विशेषता है क्योंकि यह सीधे परागण प्रक्रिया के लिए उपलब्ध समय को निर्धारित करती है। इस लेख में फूलों के खिले रहने की अवधि किन-किन कारकों पर निर्भर कर सकती है, उसे समझने का प्रयास किया गया है।

17

प्रतिबिम्ब: वास्तविक या आभासी?

आम तौर पर लोग सभी मौजूदा वैज्ञानिक सिद्धान्तों और कानूनों को स्वीकार करते हैं क्योंकि वे सभी त्रुटियों और अपवादों के बावजूद वर्तमान स्थिति में सर्वोत्तम सम्भव स्पष्टीकरण हैं। उक्त लेख में लेखक ने छवि निर्माण के सरल उदाहरण के साथ उन पहलुओं के साथ होने वाले नए अन्वेषणों को समझाने की कोशिश की है जिन्हें अनदेखा किया जाता है। प्रतिबिम्ब निर्माण में जब हम वस्तुओं को दर्पण में देखते हैं, तब क्या होता है और वे कैसी दिखाई देती हैं? भिन्न प्रकार के दर्पण जैसे समतल, अवतल आदि में प्रतिबिम्ब कैसे बनता है और दिखाई देता है? लगता तो ऐसा है कि वस्तु का प्रतिबिम्ब दर्पण की सतह के 'पीछे' है, लेकिन हम जानते हैं कि दर्पण के 'अन्दर' कोई जगह नहीं है जहाँ से हमें वह सारी गहराई दिखे जो हमें प्रतीत होती है। विभिन्न लैंसों के साथ किरण-पथ बनाने के क्या-क्या नियम आदि हैं, पढ़ते-समझते हैं प्रतिबिम्ब निर्माण के विस्तृत विवरण को इस लेख में।

34

शैक्षणिक संदर्भ

अंक-73 (मूल अंक-130), सितम्बर-अक्टूबर 2020

इस अंक में

05 | गणितीय फसाना
विवेक कुमार मेहता

11 | छोटे, फिर भी महान: विश्वव्यापी बैक्टीरिया
माधव गाडगिल

17 | फूलों का खिलना और मुरझाना
किशोर पंवार

25 | अजगर की शरीर-क्रिया की समझ के फायदे
विपुल कीर्ति शर्मा

34 | प्रतिबिम्ब: वास्तविक या आभासी?
उमा सुधीर

45 | इतिहास: किस काम का है यह? - भाग-4
शेषागिरी केएम राव

56 | ऑक्सीजन अन्दर या बाहर?
गीता जोशी

61 | बच्चों का पूर्वज्ञान बनाम वैज्ञानिक तर्क
माधव केलकर

69 | नंदा मैडम की कक्षा
सुधीर श्रीवास्तव

78 | सूरज के दैत्य
सैम मॅक्ब्रैट्नी

89 | लौकी की बेल में सफेद फूल आते हैं, तो उसका फल...
सवालीराम

संदर्भ अब ईपब फॉर्मेट में!

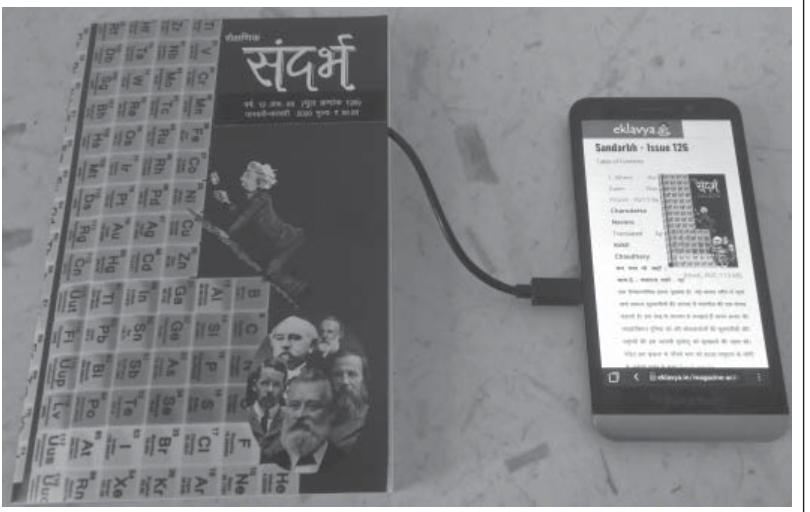

संदर्भ हमेशा होगी आपके पास
लीजिए नई ईपब सदस्यता

सदस्यता शुल्क	एक साल	तीन साल
	150 रुपए	400 रुपए

अधिक जानकारी के लिए सम्पर्क कीजिए

ई-मेल: pitarakart@eklavya.in

वेबसाइट: www.pitarakart.in

गणितीय फसाना

विवेक कुमार मेहता

इस गणितीय फसाने की शुरुआत एक लाइन से करते हैं, एक सीधी-सरल लकीर।

चित्र-1

मान लेते हैं कि इस लकीर की लम्बाई नौ से.मी. है, अब इस लकीर में हम एक फेरबदल कर एक नई आकृति बनाते हैं। फेरबदल यह है कि लकीर के बीच के हिस्से को हटाकर, उसकी जगह उसी लम्बाई के दो अन्य टुकड़ों को कुछ इस तरह चित्र में शामिल किया जाए (चित्र-2)।

चित्र-2

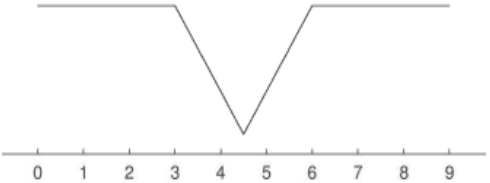

इस आकृति में शामिल चार रेखा-खण्डों की कुल लम्बाई होगी 12 से.मी.। अब हम फिर से अपने साथी फेरबदल के पास चलते हैं और उसे इस आकृति के तमाम रेखा-खण्डों पर लागू करते हैं। ऐसा करने पर हमें चित्र-3 वाली आकृति मिलेगी।

चित्र-3

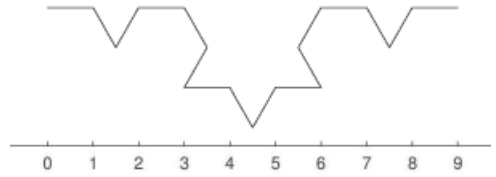

इसमें 1 से.मी. की लम्बाई के कुल सोलह रेखा-खण्ड हैं और उनकी कुल लम्बाई होगी 16 से.मी.। चित्र-3 को कुछ इस तरह भी देखा जा सकता है कि यह चित्र-2 के चार लघु-स्वरूपों (scaled-down) से मिलकर बना हुआ है। चित्र-3 के इन लघु-स्वरूपों की आकृति हूबहू चित्र-2 की आकृति से मिलती है, है न!

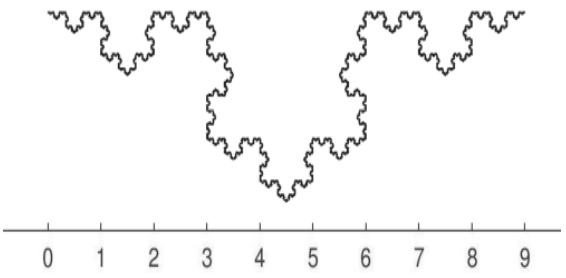

चित्र-4

अब अगर हम अपने फेरबदल को चित्र-3 की आकृति और फिर उसके बाद मिलने वाली आकृति और फिर उसके बाद की, बाद की, बाद की तमाम आकृतियों पर लागू करें, तो हमें कुछ ऐसा चित्र मिलेगा (चित्र-4)।

चित्र-4 अपने आप में एक बहुत ही खास आकृति है। वैसे इस आकृति में शामिल तमाम रेखा-खण्डों की कुल लम्बाई क्या होगी? अगर इसके किसी भी छोटे हिस्से को बड़ा करके देखा जाए तो हम पाएँगे कि यह आकृति हर अनुमाप (scale) पर अपने आप को दोहराती है। गणितीय भाषा में ऐसी आकृतियों या वस्तुओं को फ्रेक्टल (Fractal) कहा जाता है और हर अनुमाप में एक जैसे होने के गुण को सेल्फ-सिमिलेरटी (Self-similarity)। फ्रेक्टल्स की यह खूबी उन्हें इतना खूबसूरत और अनोखा बनाती है कि देखने वाला भले ही इनके पीछे के गणित से परिचित न भी हो तब भी वाह-वाही किए बगैर नहीं रह सकता।

इस बिन्दु पर शायद एक सवाल आपके दिमाग में चल रहा हो कि अगर हम पेन और कागज़ लेकर इस आकृति को बनाना चाहें तो ज़्यादा दूर तक नहीं जा पाएँगें, क्योंकि कुछ फेरबदलों के बाद रेखा-खण्डों की लम्बाई इतनी छोटी हो जाएगी कि मामूली पेन की मदद से तो उनको खींच पाना नामुमकिन होगा।

बात बिलकुल सही है, चित्र-4 में दिखलाई गई आकृति को पेन और कागज़ पर हाथ से बना पाना नामुमकिन होगा। ऐसे में एक कम्प्यूटर ही हमारी मदद कर सकता है। यहाँ भी हमने एक कम्प्यूटर की मदद से ही यह चित्र बनाया है।

फ्रेक्टल्स का वास्तविकता से सम्बन्ध

लेकिन इसका यह कतई मतलब नहीं है कि फ्रेक्टल्स मात्र एक गणितीय अवधारणा है और इनका हमारी ज़मीनी हकीकत से कोई लेना-देना नहीं है। आप किसी पेड़ या गोभी के फूल में भी सेल्फ-सिमिलेरटी का यह गुण देख सकते हैं। लेकिन यह सेल्फ-सिमिलेरटी एक सीमा के बाद दिखाई नहीं देती क्योंकि इन भौतिक वस्तुओं में फेरबदल कुछ

चरणों तक ही हो पाता है। अलग शब्दों में कहें तो इन भौतिक वस्तुओं को किसी गणितीय फ्रेक्टल का एक सन्निकटन (approximation) कहा जा सकता है। ऐसे फ्रेक्टल्स से हमारा संसार भरा पड़ा हुआ है। और तो और ये फ्रेक्टल्स हमारे-आपके शरीर में भी विराजमान हैं। हमारे शरीर का वाहिकातंत्र या फेफड़े भी इसी श्रेणी में आते हैं। सवाल बनता है कि आखिर हमारे शरीर में ऐसे फ्रेक्टल्स की क्या दरकार है? इस पर आगे बात करेंगे। उससे पहले चलिए, एक दुनियाई फ्रेक्टल को निहार लेते हैं।

कुछ साल पहले, मैं अपनी यूनिवर्सिटी के पास एक गाँव में गया था। असल में, गया तो था मैं अपने एक मित्र के घर पर खाने की दावत पर, लेकिन खाने के बाद मन किया कि जब गाँव आए हैं तो कुछ ताज़ी सब्ज़ियाँ वगैरह ले ली जाएँ। मैं अपने मित्र प्रदीप के साथ निकल पड़ा गाँव की सैर पर। प्रदीप मुझे अब्दुल भाई के खेतों में ले गए। सब्ज़ी के अलावा एक और वजह थी अब्दुल भाई के खेत में जाने की। प्रदीप ने मुझे बताया कि अब्दुल भाई के खेत में एक ऐसी गोभी फली है जिसे देखने गाँव भर के लोग आ रहे हैं। मेरी भी उत्सुकता बढ़ी। लेकिन खेत में जो मुझे मिलने वाला था, उसकी कल्पना तो मैंने सपने में भी नहीं की थी।

गोभी का सीज़न खत्म होने वाला था, तो अब्दुल भाई ने गोभी के खेतों में अपनी गाय एक लम्बी रस्सी से बाँधकर छोड़ रखी थी। गाय अपने पहुँच के घेरे में जहाँ-तहाँ घूम-घूम कर बची-खुची गोभियाँ निपटाने में लगी हुई थी। अब्दुल भाई से दुआ-सलाम होने के बाद उन्होंने मुझसे पूछा, "क्या आप भी वही देखने आए हैं?" मेरे हामी भरने के साथ ही वे मुझे गाय की पहुँच से दूर वाले खेत के उस हिस्से की ओर ले गए जहाँ वह गाँव-विख्यात गोभी लगी हुई थी। मैंने जो अद्‌भुत नज़ारा देखा, आप भी देखिए (चित्र-5)।

है तो ये गोभी का ही फूल लेकिन गणितीय भाषा में इस पर उभरे हुए पैटर्न का नाम है फिबोनैकी डबल स्पाइरल (Fibonacci Double Spiral) और यह लगभग एक फ्रेक्टल है क्योंकि यहाँ फिबोनैकी डबल स्पाइरल पैटर्न की पुनरावृत्ति कुछ चरणों तक

चित्र-5

हो रही है। लेकिन जो भी हो, ये है बड़ा ही खूबसूरत। जाने इस फूल का फिर हुआ क्या। किसी गाय ने खाया या इन्सान ने।

निर्माण के नियम

गणितज्ञों ने फ्रेक्टल्स बनाने के कई अनोखे नियम खोज निकाले हैं। माईकल बार्नस्ली नाम के एक गणितज्ञ ने तो सिर्फ बिन्दुओं की मदद से सुन्दर फ्रेक्टल्स बनाने के आसान नियम दिए हैं। चित्र-6 की आकृति जिसे सियरपिन्स्की (Sierpinski) त्रिभुज कहा जाता है, भी एक ऐसे ही आसान-से नियम के आधार पर बनाई गई है।

इसे बनाना शुरू करने के लिए हमें चाहिए होंगे कोई ऐसे तीन बिन्दु जो कि एक सीधी रेखा पर ना हों। इन्हें पहचान के लिए कुछ नाम दे दीजिए (1, 2, 3 या A, B, C)। सियरपिन्स्की त्रिभुज बनाने की इस प्रक्रिया में ये तीन शुरुआती बिन्दु स्थाई रहेंगे। इसके बाद हमें चाहिए एक पासा और एक अन्य बिन्दु जिसका नाम फिलहाल हम 'S' रख देते हैं। अब पासा फेंकिए। अगर एक या दो आए तो बिन्दु 'S' व पहले स्थाई बिन्दु के ठीक मध्य में एक नया बिन्दु स्थापित कीजिए। अब इस नए बिन्दु को 'S' नाम दे दीजिए। ठीक इसी तरह अगर पासे में तीन या चार आए तो बिन्दु 'S' व दूसरे स्थाई बिन्दु के ठीक मध्य में नया 'S' स्थापित कीजिए। अब तक तो आप समझ ही गए होंगे कि अगर पासे में पाँच या छः आए तो क्या करना होगा। इस प्रक्रिया को दोहराते जाइए। हाथ से पेन-कागज़ पर करने से थोड़ी देर में आप बोर हो सकते हैं। इसीलिए यहाँ कम्प्यूटर का इस्तेमाल सही रहेगा। चित्र-6 भी कम्प्यूटर की मदद से तैयार किया गया है और इसमें 50,000 बिन्दु हैं। पर देखिए तो ज़रा, क्या खूबसूरत पैटर्न उभर कर आया है। आप किन्हीं भी तीन बिन्दुओं से शुरू कीजिए, नतीजा ऐसा ही मिलेगा। हाँ, आपके चुने हुए बिन्दुओं के अनुरूप आपका सियरपिन्स्की त्रिभुज कुछ टेढ़ा-मेढ़ा हो सकता है।

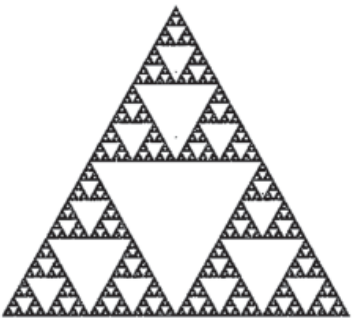

चित्र-6

अब ज़रा चित्र-7 पर गौर फरमाइए। चित्र के बाईं ओर वाली तस्वीर मेरे घर के ठीक सामने उग आए एक फर्न या पर्णांग की है। इसे असमिया भाषा में बिहलागौनि कहते हैं। माना जाता है कि यह जोड़ों के दर्द को

कम करने में मदद करता है। इसी की तरह दिखने वाली एक साग धेकिया को खाया भी जाता है। इसे अण्डे की भुर्जी के साथ पकाया जाता है और इसका ज़ायका शानदार होता है। इस तस्वीर में दाईं ओर के चित्र को कम्प्यूटर पर 50,000 बिन्दुओं से बनाया गया है। सियरपिन्स्की त्रिभुज के जैसे ही लेकिन एक थोड़े पेचीदा नियम से। इस चित्र को हम किसी भी अनुमाप (scale) पर देखें तो पाएँगे कि हर अनुमाप में फर्न की आकृति एक जैसी ही है। तो कल को अगर कोई आपसे पूछे कि पर्णांग की आकृति क्या है, तो बतलाना मत भूलिएगा कि यह दुनियाई यानी कि लगभग फ्रेक्टल है।

महत्ता

अब वैसे तो फ्रेक्टल अपने आप में ही खूबसूरत होते हैं, लेकिन पूछने वाले ये सवाल भी करते हैं कि आखिर इस तरह की आकृतियों की और क्या खूबियाँ हैं। क्यों ये फ्रेक्टल्स प्रकृति में इतने आम हैं? मसलन, आखिर क्या कारण है कि हमारे फेफड़े फ्रेक्टल आकृति के रूप में विकसित हुए? ये और ऐसे तमाम सवालों ने कई लोगों को उलझाकर रखा हुआ है। कुछ के जवाब पूरे या अधूरे मिल चुके हैं। कुछ की तलाश जारी है।

यहाँ एक उदाहरण के तौर पर चलिए इन्सानी फेफड़े की बात करते हैं। फेफड़े हमारी श्वसन प्रणाली के मुख्य अंग हैं। चन्द टेनिस गेंदों के आयतन के बराबर जगह घेरने वाले हमारे इन फेफड़ों का तल-क्षेत्रफल (surface area) एक टेनिस कोर्ट के बराबर होता है। सवाल बनता है कि आखिर यह कैसे सम्भव हुआ? और जवाब है फ्रेक्टल ज्यामिति से।

इस बात को समझने के लिए हम अपने पहले उदाहरण की मदद लेंगे। बस इस दफे फर्क यह होगा कि एक

चित्र-7

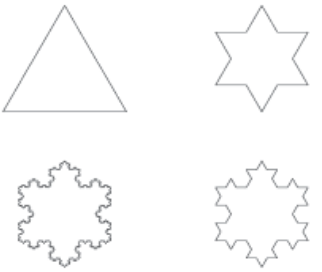

चित्र-8

लकीर की जगह हम शुरुआत एक त्रिभुज से करेंगे और फिर अपना पुराना फेरबदल इस त्रिभुज की तीनों भुजाओं पर लगाते जाएँगे (चित्र-8)। अब अगर कोई प्रश्न करे कि इस तरह मिलने वाली आकृति की परिधि की लम्बाई क्या होगी तो आपका जवाब क्या होगा? जवाब के बारे में सोचने से पहले आपका ध्यान उस बात पर फिर से दिला दूँ कि मिलने वाली आकृति एक फ्रेक्टल होगी - यानी कि एक ऐसी आकृति जो कि हर अनुमाप में एक जैसी होगी। हम परिधि को जितने भी करीब से देखें, हमें चित्र-4 वाली आकृति अपने छोटे स्वरूपों में मिलती जाएगी। अब ऐसी हालत में तो परिधि असीमित होगी, लेकिन क्षेत्रफल का क्या? क्षेत्रफल तो सीमित ही है क्योंकि चित्र-8 में मिले फ्रेक्टल को मैं एक सीमित क्षेत्रफल के वर्ग, आयत, वृत्त या आकृति के घेरे में रख सकता हूँ। यह तो गज़ब ही हो गया। एक ऐसी आकृति जिसका क्षेत्रफल तो सीमित है, लेकिन परिधि असीमित। और ऐसा इस आकृति के फ्रेक्टल हो पाने के कारण ही सम्भव हो पाया है। यही बात तीन आयामों में हम आयतन और तल-क्षेत्रफल के सम्बन्ध में भी कह सकते हैं। फ्रेक्टल ज्यामिति के चलते एक ऐसी आकृति या आकार सम्भव है, जिसका आयतन तो कम हो लेकिन उसकी तुलना में तल-क्षेत्रफल काफी ज़्यादा।

फ्रेक्टल्स से जुड़ी कई अवधारणाएँ हैं जिनके बारे में जानने के लिए आप लेख के आखिर में दिए गए स्रोतों की मदद ले सकते हैं। मैं आपको यकीन दिलाता हूँ, फ्रेक्टल्स आपको हमारे इस संसार को देखने के लिए नई नज़र देंगे और शुरुआत तो आप कर ही चुके हैं। अगली बार गर कोई गणितज्ञ आपको यह कहता दिखाई या सुनाई दे कि गणित खूबसूरत है - 'Mathematics is beautiful!', आप भी कहिएगा, "यकीनन।"

विवेक कुमार मेहता: आई.आई.टी कानपुर से मेकेनिकल इंजिनीयरिंग में पीएच.डी. की है एवं तेजपुर विश्वविद्यालय, असम में पढ़ा रहे हैं।

सन्दर्भ:

1. Fractals: A graphic guide, Nigel Lesmoir-Gordon, Will Rood & Ralph Edney
2. Fractals: A very short introduction, Kenneth Falconer

छोटे, फिर भी महान: विश्वव्यापी बैक्टीरिया

माधव गाडगिल

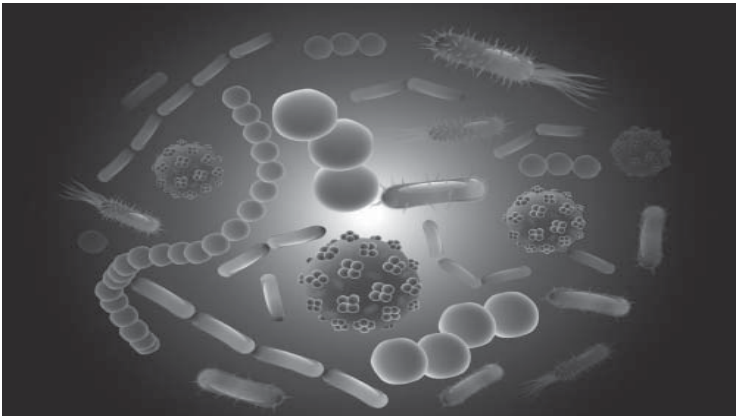

मानव चाहे जितना विध्वंस करे और चाहे पृथ्वी पर से अपने वंश को ही खत्म कर दे, फिर भी संसार के असली मालिक बैक्टीरिया के साम्राज्य को कोई हानि नहीं पहुँचेगी।

यदि किसी से यह पूछा जाए कि "आप कौन" तो शायद जवाब मिलेगा, "इस शरीर को फलानाजी-ढिकानाजी कहते हैं।" यदि आगे यह पूछा जाए कि "क्या यह शरीर एक ही जीव है?" तो शायद फलानाजी-ढिकानाजी कहेंगे, "और नहीं तो क्या?" विज्ञान कहता है कि मनुष्य का शरीर खुद के होने का भान देने वाला एक जीव तो है ही, उसके अलावा हमारी त्वचा पर हर वर्ग सेंटीमीटर पर लगभग एक लाख बैक्टीरिया धमाचौकड़ी कर रहे हैं। और तो और, पेट में करोड़ों सूक्ष्म जीव डेरा जमाए हुए हैं।

यदि फलानाजी-ढिकानाजी ने हाल में दही-चावल खाया होगा तो दूध को दही बनाने वाले लाखों बैक्टीरिया पेट में पहुँच गए होंगे, वे अलग। यदि हट्टे-कट्टे फलानाजी-ढिकानाजी का वज़न 100 किलो है तो इसमें से 10 किलो भार तो शरीर के ऊपर और अन्दर स्थित बैक्टीरिया का ही है। इन बैक्टीरिया की मदद के बिना फलानाजी-ढिकानाजी अपना

भोजन पचा भी नहीं सकते। उन्होंने जो दही खाया था, उसे बनाने के लिए दूध किसी भैंस ने दिया होगा। वह भैंस अपने चार खण्डों वाले आमाशय में रहने वाले बैक्टीरिया की मदद के बिना घास को पचा नहीं सकती। दही-चावल का चावल भी बैक्टीरिया की मदद से ही उपजता है। धान जैसी वनस्पति हवा में उपस्थित नाइट्रोजन का उपयोग नहीं कर सकती। बैक्टीरिया हवा से नाइट्रोजन लेकर नाइट्रेट नामक अणुओं में बदल देते हैं। ये नाइट्रेट मिट्टी में मिल जाते हैं जिनका उपयोग धान और अन्य पौधे कर सकते हैं।

सूक्ष्मजीवों की महत्ता

सारांश यह है कि बैक्टीरिया जैसे सूक्ष्मजीव पौधों और जन्तुओं की मदद के बिना आराम से जीवित रह सकते हैं, लेकिन पौधों और जन्तुओं के लिए सूक्ष्मजीवों की मदद के बिना जी पाना असम्भव है। पृथ्वी की सतह पर रहने वाले जीवधारियों की उत्पत्ति पौने चार अरब साल पहले हुई थी। इसमें से पहले दो अरब साल तो सूक्ष्मजीवों का ही राज था। आदिम सूक्ष्मजीवों की कोशिकाओं में एक ही कक्ष होता है और उनमें कोशिकांग नहीं पाए जाते हैं। उन्नत वनस्पतियों और जन्तुओं की कोशिकाओं की संरचना अधिक जटिल होती है। पौधों की कोशिकाओं में सूर्य के प्रकाश की ऊर्जा का उपयोग करने वाले क्लोरोफिल से भरे कोशिकांग पाए जाते हैं जिन्हें क्लोरोप्लास्ट कहते हैं। पौधों और जन्तुओं, दोनों की कोशिकाओं में ऊर्जा उपयोग का नियंत्रण करने वाले माइटोकॉण्ड्रिया नामक कोशिकांग होते हैं।

क्लोरोप्लास्ट व माइटोकॉण्ड्रिया नामक इन कोशिकांगों का इतिहास बहुत रोचक है। एक सूक्ष्मजीव द्वारा दूसरे सूक्ष्मजीव को निगल लेने के फलस्वरूप ये बने हैं। क्लोरोप्लास्ट मूल रूप से वे सायनोबैक्टीरिया हैं जिन्हें अन्य सूक्ष्मजीवों ने निगल लिया है। इसी प्रकार से माइटोकॉण्ड्रिया मूल रूप से रिकेट्सिया जैसे बैक्टीरिया हैं।

कोशिकांगों से सज्जित ऐसी उन्नत कोशिकाएँ लगभग डेढ़ अरब साल पहले पृथ्वी पर प्रकट हुई थीं। बहुकोशिकीय जीवों का विकास होने में और एक अरब साल लग गए।

इसका मतलब यह हुआ कि पृथ्वी पर शुरुआती सवा दो अरब सालों तक जीवन का वृक्ष केवल सूक्ष्मजीवों के रूप में ही था। हमें तो सूक्ष्मजीवों की दुनिया के बारे में पहली बार पता चल पाया सवा तीन सौ साल पूर्व, सूक्ष्मदर्शी का आविष्कार होने पर। पिछले 50-60 सालों में ही यह ठीक-ठीक समझ में आया कि जीवजगत कौन-से बुनियादी अणुओं से बना है। यह भी समझ बनी कि जीवन के वृक्ष की छोटी-बड़ी शाखाएँ और उनसे

हमारा शरीर: जीवों का अड्डा

आपको यह जानकर आश्चर्य होगा कि हमारा शरीर कई जन्तुओं का अड्डा है। कई जन्तु हमारे शरीर के ऊपर और कई जन्तु हमारे शरीर के अन्दर भी रहते हैं। इनमें से कुछ हमें नुकसान पहुँचाते हैं, कुछ वैसे ही रहते हैं, तो कुछ लाभदायक भी हैं।

सिर की जूँ से तो सब परिचित हैं। यह कई लोगों के सिर पर बालों के बीच छिपकर रहती है और एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति के सिर पर पहुँच जाती है। यह हमारे सिर से खून चूसती है। जूँ के जैसे कुछ जन्तु शरीर के अन्य भागों पर भी रहते हैं।

सिर में जो रूसी हो जाती है, वह एक फफूँद के कारण होती है। फफूँद वास्तव में एक मृतोपजीवी है। सिर पर पनपने वाली इस फफूँद के कारण सिर की त्वचा की ऊपरी परत सूखकर झड़ने लगती है, जिसे हम रूसी कहते हैं।

हमारी त्वचा में कुछ सूक्ष्मजीव भी रहते हैं। ये इतने छोटे होते हैं कि हमें दिखाई नहीं पड़ते। नाखूनों में, शरीर पर पाए जाने वाले रोमों के छिद्र में, आँख की पलकों के नीचे, न जाने कहाँ-कहाँ ये सूक्ष्मजीव पलते हैं। कोई घाव हो जाए, तो उसमें भी ये सूक्ष्मजीव पलते हैं। इन्हीं की वजह से मवाद बनता है।

कुछ सूक्ष्मजीव हमारे शरीर के अन्दर भी रहते हैं। ऐसा बताते हैं कि हमारी आँतों में लाखों सूक्ष्मजीव पलते हैं। ये हमें कोई नुकसान नहीं पहुँचाते। बल्कि कुछ सूक्ष्मजीव तो ऐसे हैं जो हमारे लिए विटामिन बनाते हैं। लेकिन कुछ हानिकारक जीव भी हमारे शरीर में पहुँच जाते हैं। जैसे कई बच्चों के पेट में कीड़े (कृमि) हो जाते हैं। पटार ऐसा ही एक कृमि है। पटार जैसे अन्य कृमि भी कभी-कभी मनुष्य की आहारनली में पहुँच जाते हैं। वहाँ ये हमारा पचा-पचाया भोजन चट कर जाते हैं।

कुछ सूक्ष्मजीव ऐसे भी हैं जो हमारे शरीर में पहुँचकर रोग उत्पन्न करने की क्षमता रखते हैं। जैसे- मलेरिया के परजीवी, टीबी के जीवाणु, निमोनिया के जीवाणु, पोलियो के विषाणु आदि। ये हमारे शरीर में अलग-अलग स्थानों को अपना घर बनाते हैं। जैसे, टीबी के जीवाणु प्राय: हमारे फेफड़ों में वास करते हैं।

छोटी उपशाखाएँ कैसे निकलती गईं। इस सबके परिणामस्वरूप जीवन के वृक्ष के बारे में हमारी धारणाएँ पूरी तरह बदल गईं। एक उदाहरण देखिए।

सूक्ष्मजीवों की शाखाओं का वर्णन

चालीस साल पहले तक यह माना जाता था कि सूक्ष्मजीव का मतलब केवल बैक्टीरिया होता है। लेकिन जब ऐसे सारे सूक्ष्म जीवधारियों के आणविक स्तर के घटकों की जानकारी उपलब्ध होने लगी तब समझ में आया कि सूक्ष्मजीवों के दो अलग-अलग जगत हैं – बैक्टीरिया और आर्किया। ये दो जगत, जीवन वृक्ष के तने से निकली हुई जीवजगत की दो प्रारम्भिक महाशाखाएँ हैं जो प्रथम सवा दो अरब सालों तक बिना किसी रुकावट के बढ़ती रही थीं।

इसके बाद इन दोनों शाखाओं का ऐसा मिलन हुआ कि आर्किया के शरीर (कोशिका) में बैक्टीरिया समा गए और अधिक उन्नत तीसरी महाशाखा बन गई। पिछले डेढ़ अरब सालों में इन तीन महाशाखाओं से अनेक शाखाएँ और उपशाखाएँ निकलती रही हैं। अधिक विस्तार से देखें तो प्रोकैरियोट-आर्किया महाशाखा की 7 शाखाएँ निकलीं और प्रोकैरियोट-बैक्टीरिया महाशाखा की 6 शाखाएँ निकलीं। इस प्रकार कुल 13 शाखाएँ निकलीं। इसके विपरीत, यूकैरियोट्स से केवल 10 शाखाएँ निकलीं। यानी बैक्टीरिया और आर्किया में उन्नत जीवधारियों की तुलना में अधिक विविधता पाई जाती है। इतना ही नहीं, यूकैरियोट्स की 10 में से 7 शाखाएँ पूरी तरह से एककोशिकीय जीवों की हैं। शेष तीन शाखाएँ हैं – वनस्पति, जन्तु और फफूँद। इन तीन शाखाओं के भी सारे सदस्य बहुकोशिकीय नहीं हैं, कई एककोशिकीय भी हैं। हम बहुकोशिकीय जन्तुओं और वनस्पतियों को सरलता से देख तो सकते हैं लेकिन शाखाओं के स्तर पर ऐसे बहुकोशिकीय जन्तुओं और वनस्पतियों की विविधता न के बराबर है, और जो है वह अभी हाल ही में विकसित हुई है। पृथ्वी पर जीवन के पौने चार अरब सालों के इतिहास में मात्र 60 करोड़ साल पहले ही हमारे जैसे बहुकोशिकीय जीवधारी अस्तित्व में आए हैं।

इसीलिए आज जीव वैज्ञानिक विश्वास के साथ कह रहे हैं कि पृथ्वी के असली मालिक तो बैक्टीरिया और आर्किया हैं। संख्या की दृष्टि से हमारे रिश्तेदार, बहुकोशिकीय जन्तु और

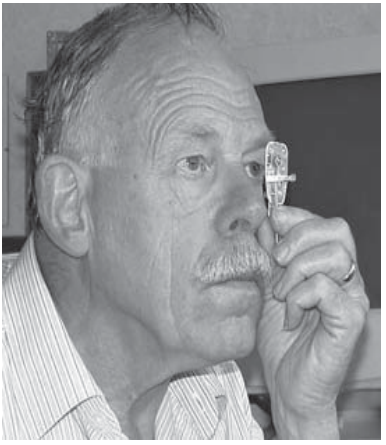

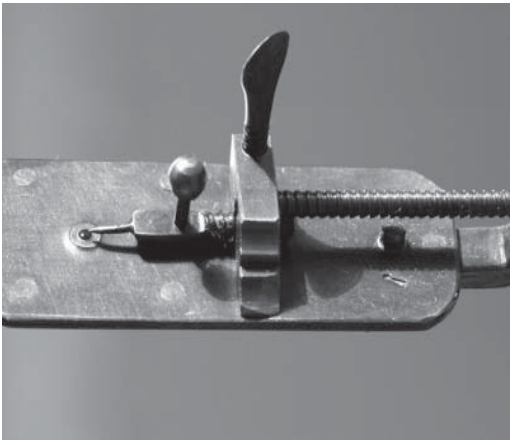

यहाँ यह समझना ज़रूरी है कि आर्किया कोशिका में बैक्टीरिया का समावेश कितना बड़ा परिवर्तन था। बैक्टीरिया और आर्किया एककोशिकीय जीव हैं और इनकी कोशिका में कोई सुगठित केन्द्रक नहीं होता। उनका केन्द्रक बिखरा हुआ होता है और उसके इर्द-गिर्द झिल्ली नहीं होती। आर्किया की कोशिका में बैक्टीरिया के समाहित हो जाने के कारण जो नई कोशिकाएँ बनीं, उनमें झिल्ली में लिपटा हुआ एक सुगठित केन्द्रक था। जिनके शरीर की कोशिकाओं में बिखरा हुआ और बिना झिल्ली वाला केन्द्रक होता है, उन्हें केन्द्रकविहीन या प्रोकैरियोट्स कहते हैं। इसके विपरीत, सुगठित और झिल्लीयुक्त केन्द्रक वाले जीवधारियों को केन्द्रकयुक्त या यूकैरियोट्स कहते हैं। यूकैरियोट्स के बनने के बाद जैव-विकास के नए-नए आयाम खुलते गए। इसलिए इस परिवर्तन को जैव-विकास की धारा का एक बड़ा मोड़ माना जाता है।

वनस्पति, उनकी तुलना में कुछ भी नहीं हैं। इतना ही नहीं, जिन परिस्थितियों में बहुकोशिकीय जन्तु और वनस्पति जीवित ही नहीं रह सकते, उनमें सूक्ष्मजीव मज़े से रहते हैं।

सूक्ष्मजीवधारियों की उत्पत्ति

जब सूक्ष्मजीव पहली बार पृथ्वी पर प्रकट हुए, उस समय का वातावरण और जलावरण आज से एकदम भिन्न था। उसमें ऑक्सीजन लगभग शून्य थी और कार्बन डाईऑक्साइड अधिक मात्रा में थी। अमोनिया, मीथेन, हाइड्रोजन सल्फाइड जैसी जो गैसें आज हमें विषैली लगती हैं, वे भी काफी मात्रा में मौजूद थीं। जीवन की शुरुआत गहरे समुद्र में ऐसे स्थान पर हुई थी जहाँ दरारों में से उबलता हुआ लावा बाहर निकलकर आता था। यानी बिलकुल प्रारम्भिक सूक्ष्म जीवधारियों (आर्किया) की उत्पत्ति एकदम अलग प्रकार के पर्यावरण में हुई थी। ऐसी कठिन परिस्थितियों में तपकर निकले हुए सूक्ष्मजीव कई ऐसे कठिन पर्यावरणों में रह सकते हैं जहाँ जन्तुओं और वनस्पतियों के जीवित रहने की कल्पना भी नहीं की जा सकती। कुछ सूक्ष्मजीव तो 200 डिग्री सेल्सियस तापक्रम पर उबलते पानी में फलते-फूलते हैं (साधारण परिस्थिति में पानी 100 डिग्री सेल्सियस पर उबलता है, लेकिन समुद्र की गहराइयों में दाब इतना अधिक होता है कि पानी बहुत ऊँचे तापमान पर उबलता है)।

खुद के भोजन का निर्माण कर सकने वाली क्लोरोफिलयुक्त वनस्पतियों के लिए ऊर्जा का एकमात्र स्रोत प्रकाश है, लेकिन अनेक हुनरमन्द सूक्ष्मजीव कई प्रकार के ऊर्जा स्रोतों का उपयोग करते हुए अपना पोषण तैयार कर लेते हैं। इन हुनरमन्द जीवों में सबसे विलक्षण वे हैं जो पृथ्वी की सतह से सैकड़ों मीटर नीचे रहते हैं। ये चट्टानों के घटकों की पानी के साथ होने वाली

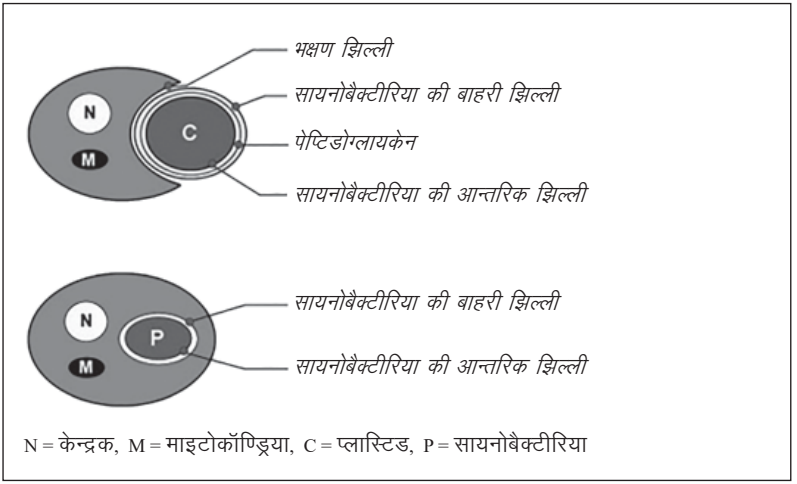

सायनोबैक्टीरिया वो बैक्टीरिया हैं जो प्रकाश संश्लेषण करते हैं। यूकैरियोटिक कोशिका से एक झिल्ली बनती है, जो सायनोबैक्टीरिया को घेरने लगती है, अन्ततः सायनोबैक्टीरिया कोशिका के अन्दर समाहित हो जाता है।

रासायनिक क्रिया से निकलने वाली ऊर्जा से अपना पोषण जुटा लेते हैं। इस प्रकार की क्षमता के कारण सूक्ष्मजीवों ने विभिन्न परिवेशों में धाक जमा ली है और यह दिखा दिया है कि वे किसी भी प्रकार की परिस्थिति से जूझते हुए फल-फूल सकते हैं।

सूक्ष्म जीवधारी मानव के समान असहिष्णु नहीं हैं। हमने पृथ्वी पर जिस प्रकार और जिस गति से विनाश किया है, उससे लग रहा है कि पृथ्वी पर मानव का अस्तित्व कभी भी समाप्त हो सकता है। लेकिन मानव चाहे जितना हंगामा करे, भीषण परमाणु युद्ध भी कर ले तो भी अधिक-से-अधिक यह होगा कि हम अपने साथ अधिकांश बहुकोशिकीय जीवधारियों को ले डूबेंगे, लेकिन सूक्ष्मजीव तो हर हाल में बने रहेंगे।

माधव गाडगिल: भारतीय पारिस्थितिकविद्, अकादमिक, लेखक व स्तम्भ लेखक। भारतीय विज्ञान संस्थान के तत्वावधान में गठित एक शोध मंच, सेंटर फॉर इकोलॉजिकल साइंसेज़ के संस्थापक। भारत सरकार की वैज्ञानिक सलाहकार परिषद के पूर्व-सदस्य। 2010 में गठित वेस्टर्न घाट्स इकोलॉजी एक्सपर्ट पैनल (डब्ल्यूजीईईपी), जिसे गाडगिल आयोग के रूप में जाना जाता है, के प्रमुख। पर्यावरणीय उपलब्धि के लिए वोल्वो पर्यावरण पुरस्कार और टायलर पुरस्कार से सम्मानित। भारत सरकार द्वारा 1981 में पद्मश्री पुरस्कार और 2006 में पद्मभूषण पुरस्कार से सम्मानित।

यह लेख *एकलव्य* द्वारा प्रकाशित माधव गाडगिल की पुस्तक *जीवन की बहार* से साभार।

शैक्षणिक

संदर्भ

"संदर्भ अब रजिस्टर्ड डाक से
यानी आप तक पहुँचना सुनिश्चित।"

संदर्भ की सदस्यता दर बढ़ाई जा रही है ताकि
संदर्भ रजिस्टर्ड डाक द्वारा आप तक भेजी जा सके

एक प्रति का मूल्य 50 रुपए

सदस्यता शुल्क

एक साल
450 रुपए

तीन साल
1250 रुपए

आजीवन
8000 रुपए

प्रति बाउंड वॉल्यूम
300 रुपए

ई-मेल: pitarakart@eklavya.in
वेबसाइट: www.pitarakart.in

फूलों का खिलना और मुरझाना

किशोर पंवार

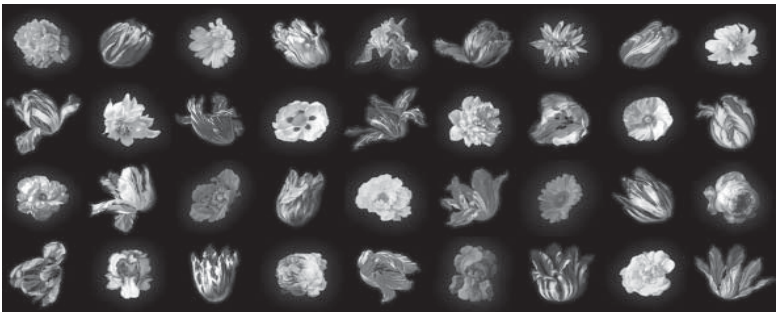

फूलों की आयु या दीर्घायु को समय के अनुरूप परिभाषित किया जा सकता है। इस अन्तराल में फूल खुला और कार्यात्मक रहता है, और पौधों की प्रजनन सफलता के लिए यह एक महत्वपूर्ण विशेषता है क्योंकि यह सीधे परागण प्रक्रिया के लिए उपलब्ध समय को निर्धारित करता है, और इस प्रकार, परागकण के वितरण में सहायक है।

अक्सर हम पेड़-पौधों की उम्र के बारे में चर्चा करते हैं जैसे एकवर्षी और बहुवर्षी पौधे। अधिकांश शाकीय पौधे एक या दो वर्ष में ही अपना जीवन-चक्र पूर्ण कर मृत्यु को प्राप्त हो जाते हैं। वहीं झाड़ियाँ और पेड़ कई साल तक ज़िन्दा रहते हैं। दस साल से लेकर सैकड़ों-हज़ारों साल पुराने पेड़ों के उदाहरण हमारे सामने हैं। गुलाब, गुड़हल, कनेर, मेहंदी जैसी झाड़ियाँ और ताड़, नीम, पीपल, बरगद जैसे शतायु पेड़। चीड़, देवदार, सिकोया के विशाल, सदाबहार पेड़ हज़ारों साल जीने वाले पेड़ों के उदाहरण हैं। पेड़ों की उम्र के साथ कभी-कभी पत्तियों की उम्र की भी चर्चा होती है जिसके आधार पर जंगलों को पतझड़ी एवं सदाबहार जंगलों में बाँटा जाता है। पत्तियों की उम्र कुछ दिन से लेकर सैकड़ों साल तक आँकी गई है। जैसे वेलविस्चिया मिरबेलिस के पौधे पर तो पूरे जीवन काल में दो ही पत्तियाँ आती हैं। परन्तु पेड़-पौधों के सबसे महत्वपूर्ण आकर्षक सुगन्धित व रसीले अंगों यानी फूलों की उम्र की चर्चा कम ही होती है।

फूलों की उम्र का निर्धारण

स्नातक और स्नातकोत्तर स्तर की

किसी भी पाठ्यपुस्तक में यह नहीं बताया जाता कि फूलों की उम्र कितनी होती है। पर हाल ही में फूलों की उम्र पर एक बहुत ही उम्दा शोधपत्र पढ़ने में आया: *जर्नल ऑफ प्लांट इकॉलॉजी* में प्रकाशित 'इफेक्ट ऑफ फ्लोरल सेक्सुअल इन्वेस्टमेंट एंड डाईकोगैमी ऑन फ्लोरल लॉन्जेविटी' (अर्थात फूलों में लैंगिक निवेश और अलग-अलग समय पर पकने वालें फूलों की उम्र पर असर)।

कुछ फूल होते हैं जो रात को खिलते हैं, सुबह मुरझा जाते हैं या झड़ जाते हैं। कुछ फूल एक बार खिलते हैं तो कई दिनों तक खिले रहते हैं। यह वैज्ञानिकों की जिज्ञासा का विषय रहा है कि फूल की उम्र का निर्धारण कैसे होता है। फूल की उम्र से तात्पर्य है कि कोई फूल कितने समय तक खिला रहता है और कामकाजी (यानी प्रजनन की दृष्टि से कामकाजी) रहता है।

फूलों की उम्र को लेकर आम तौर पर यह माना जाता है कि इस सन्दर्भ में कई कारक काम करते हैं। जैसे वह पौधा कितनी ऊँचाई वाले स्थानों पर पाया जाता है, उसका परागण किस तरीके से होता है, परागणकर्ता की उपलब्धता, और फूल का लिंग। कुछ फूल तो एकलिंगी होते हैं (अर्थात नर अथवा मादा) और उनके लिंग को लेकर कोई दुविधा नहीं होती लेकिन द्विलिंगी फूलों का लिंग भी पूरे समय एक नहीं रहता। कुछ समय तक वह परागकणों का स्रोत रहता है और कुछ समय तक वह परागकणों का ग्राही बन जाता है। इन दो अवधियों में उसका लिंग क्रमश: नर व मादा कहा जाता है।

फूलों की उम्र को लेकर समय-समय पर कई परिकल्पनाएँ प्रस्तुत हुई हैं। जैसे एक परिकल्पना का सम्बन्ध इस बात से है कि किसी पेड़ या पौधे में संसाधनों का बँटवारा कैसे होता है। परिकल्पना कहती है कि फूलों का मुख्य काम पौधे के लिए सन्तानोत्पत्ति करना है - फूलों में परागण, निषेचन की क्रिया के बाद फल और बीज बनते हैं। यही बीज तो पौधे के वंश को आगे बढ़ाते हैं। अब पौधे के सामने सवाल यह उठता है कि एक बार खिलने के बाद फूल लम्बे समय तक बना रहे या जल्दी-से झड़ जाए और नए फूल का निर्माण

किया जाए। इसका फैसला इस आधार पर होता है कि एक ही फूल को बनाए रखने (फूल के रख-रखाव) में ज़्यादा ऊर्जा खर्च होती है या नए फूल को बनाने में। यदि किसी परिस्थिति में फूलों के परागण की दर तेज़ है तो एक ही फूल को देर तक खिलाए रखने में कोई तुक नहीं है क्योंकि वह अपनी भूमिका तो निभा ही चुका है। दूसरी ओर यदि परागण की गति धीमी है तो फूल को तब तक सम्भालना ज़रूरी होगा जब तक कि उसके परागकण बिखर न जाएँ या वह अन्य फूल से परागकण प्राप्त न कर ले। अर्थात बीज निर्माण करने वाली क्रिया होने तक फूल खिला रहेगा।

इसका मतलब है कि यदि फूलों के रख-रखाव की लागत कम है तो लम्बी अवधि के फूलों को तरजीह मिलेगी क्योंकि ऐसा होने पर उसके परागकणों को प्रसारित करने के तथा अन्य फूलों से परागकण प्राप्त करने के ज़्यादा अवसर होंगे। कई अध्ययनों में पता भी चला है कि फूलों की उम्र मूलतः नर व मादा अवस्था की फिटनेस (यानी सन्तानोत्पत्ति की सम्भावना) को बढ़ावा देने से सम्बन्धित होती है।

फूलों के निर्माण की अवधि

यदि संसाधनों के बँटवारे की बात सही है तो हमें नए फूलों के निर्माण की लागत को ध्यान में रखना होगा। यह सही है कि बड़े-बड़े फूलों में परागकणों की संख्या भी ज़्यादा होती है। लेकिन यदि किसी वजह से ये परागकण फूल में ही बने रहें तो ज़्यादा परागकण बनाकर कोई फायदा नहीं होगा। ऐसा तब हो सकता है जब परागणकर्ताओं का अभाव हो।

एक महत्वपूर्ण अवलोकन यह रहा है कि *एक्विलेजिया बुर्जेरियाना* में फूल क्रमिक रूप से खिलते हैं। देखा गया है कि पहले खिलने वाले फूल में परागकणों की संख्या बाद में खिलने वाले फूल की अपेक्षा काफी अधिक होती है और पहला फूल ज़्यादा समय तक खिला रहता है। इसका एक कारण यह बताया गया है कि यह पहले फूल की फिटनेस को बढ़ाने का तरीका हो सकता है।

वैसे भी पूर्व के अवलोकनों में देखा गया था कि फूलों की लम्बी उम्र का सम्बन्ध प्रति फूल परागकणों की संख्या से है। वहीं, 110 प्रजातियों का एक अन्य अवलोकन यह भी है कि फूलों की लम्बी उम्र का सम्बन्ध फूल की साइज़ और प्रति फूल अण्डाणुओं की संख्या से है। अर्थात इन अवलोकनों से यह स्पष्ट नहीं होता कि फूलों की लम्बी उम्र का सम्बन्ध फूलों में होने वाले लैंगिक निवेश से है या नहीं है। लैंगिक निवेश से तात्पर्य है कि किसी फूल में परागकण अथवा अण्डाणु यानी जन्युओं (गैमेट्स) पर कितना निवेश

किया जाता है। ज़्यादा परागकण या ज़्यादा अण्डाणु मतलब अधिक लैंगिक निवेश।

एक परिकल्पना यह भी रही है कि जिन द्विलिंगी फूलों में नर और मादा जननांग अलग-अलग समय पर परिपक्व होते हैं (यानी भिन्नकाल परिपक्वता की स्थिति), वे अन्य फूलों की अपेक्षा ज़्यादा समय तक खिले रहते हैं। लेकिन इस बात को वास्तविक अवलोकनों का सहारा नहीं मिल पाया था।

डेल्फिनियम युआनन

अब कुछ वैज्ञानिकों ने फूलों की उम्र के कारण समझने के लिए एक और अध्ययन किया है। इस अध्ययन में उन्होंने एक ही स्थान पर उग रही 37 प्रजातियों की आबादियों को चुना था। इनमें से 21 पौधे ऐसे थे जिनमें नर और मादा अलग-अलग समय पर परिपक्व (भिन्नकाल पक्वता या डायकोगैमस) होते हैं और इन सब-के-सब में नर जननांग पहले परिपक्व होते हैं (ऐसे फूलों को पुम्पूर्वी या प्रोटण्ड्रस कहते हैं)। अन्य 16 पौधे अभिन्नकाल परिपक्वता के धनी थे।

पिम्पीनेला डायवर्सीफोलिया

शोधकर्ताओं की परिकल्पना यह थी कि किसी फूल में दो तरह के अंग पाए जाते हैं – एक तो वे जो सीधे-सीधे जनन से जुड़े होते हैं यानी स्त्रीकेसर और पुंकेसर। दूसरे वे जो इन अंगों की क्रिया में सहायक होते हैं यानी अंखुड़ियाँ, पंखुड़ियाँ, मकरन्द ग्रन्थियाँ वगैरह। उनका ख्याल था कि फूलों में पहले किस्म के अंगों यानी लैंगिक अंगों पर निवेश से तय होता है कि फूल कितने समय तक खिला रहेगा।

जिन 37 प्रजातियों का अध्ययन किया गया, उनकी खिले रहने की

अवधि में काफी विविधता थी - 1 से लेकर 15 दिन तक। उन्होंने यह भी देखा कि प्रति फूल परागकणों की संख्या में भी काफी विविधता थी (643 से लेकर 7,10,880) और अण्डाणुओं की संख्या में भी (1 से लेकर 426 तक)। फूलों की साइज़ भी बहुत अलग-अलग थी - जहाँ एक प्रजाति के फूलों की औसत साइज़ 6 वर्ग मि.मी. से कम थी *(पिम्पीनेला डायवर्सीफोलिया)*, वहीं सबसे बड़े फूल 1400 वर्ग मि.मी. के थे *(डेल्फिनियम युआनन)*।

वैसे फूलों की साइज़, परागकणों व अण्डाणुओं की संख्या तथा फूल की उम्र और नर-मादा अवस्था की उम्र नापने की विधियाँ अपने आप में रोचक हैं किन्तु यहाँ हम मापन की विधियों में नहीं जाएँगे। उनका निष्कर्ष था कि फूलों की साइज़ बढ़ने पर परागकणों की संख्या भी बढ़ती है और अण्डाणुओं की संख्या भी। अलबत्ता, फूलों की उम्र का सम्बन्ध परागकणों की तादाद से तो दिखा लेकिन अण्डाणुओं की संख्या से नहीं। और इस बात की पुष्टि हुई कि पुम्पूर्वी प्रजातियों में फूल ज़्यादा समय तक खिले रहते हैं बनिस्बत उन प्रजातियों के जिनमें भिन्नकाल परिपक्वता नहीं पाई जाती। यानी भिन्नकाल परिपक्वता होने पर फूल लम्बी उम्र पाते हैं।

यहाँ एक और बात पर गौर करना ज़रूरी है। शोधकर्ताओं ने फूलों की उम्र को तीन तरह से देखा था - पूरे फूल की उम्र, नर अवस्था की उम्र तथा मादा अवस्था की उम्र। पूरे फूल की उम्र से तात्पर्य है कि फूल के खुलने से लेकर कुम्हलाने (जो फूल के वापिस बन्द होने, मुरझाने या झड़ जाने से पता चलता है) तक की अवधि। नर अवस्था की उम्र से तात्पर्य है किसी फूल के प्रथम परागकोष के फटने से लेकर समस्त परागकोषों के फटने या वर्तिकाग्र के लोब या वर्तिकाग्र के नज़र आने तक की अवधि। मादा अवस्था की उम्र का मतलब है वर्तिकाग्र या वर्तिकाग्र के लोब खुलने से लेकर फूल के झड़ने की अवधि।

फूलों के आकार का प्रभाव

शोधकर्ताओं ने 37 प्रजातियों के फूलों में परागकणों और अण्डाणुओं की संख्या का भी हिसाब रखा। इन सारे आँकड़ों के आधार पर उन्होंने पाया कि फूल बड़ा हो तो परागकणों की संख्या भी अधिक होती है और अण्डाणुओं की संख्या भी बढ़ती है। अर्थात बड़े फूलों के साथ ज़्यादा जन्यु (गैमेट्स) पाए जाते हैं। इसका मतलब है कि बड़े फूलों में लैंगिक रचनाओं में ज़्यादा निवेश किया जाता है।

उन्होंने पाया कि 21 अलग-अलग समय पर पकने वाले फूलों वाली प्रजातियों में फूल की साइज़, फूल की उम्र और नर अवस्था की अवधि में सह-सम्बन्ध है। लेकिन मादा

अवस्था की अवधि का सम्बन्ध फूल की साइज़ और फूल की कुल उम्र से नहीं देखा गया। यह भी देखा गया कि भिन्नकाल परिपक्वता वाली प्रजातियों में नर अवस्था की अवधि, फूल की उम्र तथा परागकणों की संख्या में सकारात्मक सम्बन्ध है जबकि अण्डाणुओं के सन्दर्भ में ऐसा कोई सम्बन्ध नज़र नहीं आता। दरअसल, अण्डाणुओं की संख्या का सम्बन्ध न तो नर-मादा अवस्था की अवधि के साथ था और न ही फूल की उम्र के साथ।

इन परिणामों से संकेत मिलता है कि फूल की उम्र पर नर लैंगिक क्रिया पर किए गए निवेश का असर होता है, न कि मादा लैंगिक क्रिया पर किए गए निवेश का। हमने इस परिकल्पना की चर्चा की थी कि भिन्नकाल परिपक्वता वाली प्रजाजियों के फूलों की उम्र ज़्यादा होनी चाहिए। उक्त शोधकर्ताओं ने पाया कि यह बात सही है कि उन प्रजातियों के फूल ज़्यादा लम्बे समय तक खिले रहते हैं जिनमें पुंकेसर पहले परिपक्व होते हैं (पुम्पूर्वी फूलों के खिले रहने की अवधि औसत 6.75 दिन, अभिन्नकाल परिपक्वता वाले फूलों में 3.6 दिन)। और, पुम्पूर्वी फूलों में नर अवस्था (औसतन 2.7 दिन) की तुलना में मादा अवस्था (4.00 दिन) कहीं ज़्यादा लम्बी होती है।

उपरोक्त अध्ययन का एक निष्कर्ष यह है कि फूलों की साइज़ का

ब्रासिका लेपस

सम्बन्ध फूलों के लैंगिक निवेश से है क्योंकि ज़्यादा बड़े फूलों में ज़्यादा परागकण और ज़्यादा अण्डाणु बनते हैं। और फूल की उम्र का सम्बन्ध परागकणों की संख्या से देखा गया। 110 प्रजातियों के एक अन्य अध्ययन में यह भी देखा गया है कि कोस्टा रिका के वर्षावनों में फूल ज़्यादा देर तक खिले रहते हैं (2.7 दिन) बनिस्बत निचले कटिबन्धीय इलाकों के (1 दिन)। इसके आधार पर यह भी कहा गया है कि ऐसा शायद दो इलाकों में परागणकर्ताओं की संख्या और सक्रियता के कारण होता है। एक शोधकर्ता ने 40 प्रजातियों के अध्ययन में उन्हें अण्डाणुओं की संख्या के आधार पर तीन समूहों में

बाँटा – 1-5, 5-50 और 50 से अधिक। उन्होंने इन तीन अलग-अलग समूहों में फूलों की औसत उम्र की गणना की और पाया कि 50 से अधिक अण्डाणुओं वाली प्रजातियों में फूलों की उम्र सबसे अधिक होती है। इसके आधार पर निष्कर्ष यह निकला कि उन प्रजातियों के फूलों की उम्र का निर्धारण मादा प्रजनन को अधिकतम सफल बनाने के लिहाज़ से हुआ है।

कुछ अध्ययनों में यह भी निष्कर्ष निकला है कि कृत्रिम परागण की स्थिति में फूलों की उम्र बहुत कम हो जाती है। इसे परागण-प्रेरित झड़ना (सेनेसेंस) कहते हैं। इससे तो लगता है कि परागण वर्तिकाग्र तक पहुँच जाएँ, यही अन्तिम पड़ाव होता है। यानी फूल की उम्र वास्तव में मादा की प्रजनन सफलता को सुनिश्चित करने के लिए है। अलबत्ता, कुछ अध्ययनों से पता चला है कि अण्डाणुओं का पर्याप्त परागण हो जाने के बाद भी नर अवस्था की एक न्यूनतम उम्र बरकरार रहती है। उदाहरण के लिए, *एरिथ्रोनियम जेपोनिकम* में फूलों का झड़ना - वर्तिकाग्र पर पर्याप्त परागकण सुनिश्चित करने के बाद भी वे फूल 13 दिन तक टिके रहे। एक अन्य अध्ययन में पता चला कि *ब्रासिका लेपस* में परागकोषों से परागकण हटाकर फूलों का झड़ना तेज़ किया जा सकता है। यानी यहाँ वर्तिकाग्र पर परागकण जमा करके नहीं बल्कि परागकोष से परागकण हटाकर फूल की उम्र कम हुई। ऐसा लगता है कि फूलों की उम्र परागकणों को हटाने व जमा करने की दरों के बीच सन्तुलन पर निर्भर करती है।

चाहे अण्डाणुओं के उत्पादन का सवाल हो या परागकणों की संख्या का, बात यह लगती है कि फूलों की उम्र लैंगिक निवेश पर निर्भर करती है।

किशोर पंवार: शासकीय होल्कर विज्ञान महाविद्यालय, इन्दौर में बीज तकनीकी विभाग के विभागाध्यक्ष और वनस्पतिशास्त्र के प्राध्यापक रहने के बाद, शासकीय निर्भय सिंह पटेल विज्ञान महाविद्यालय, इन्दौर से सेवानिवृत्त। होशंगाबाद विज्ञान शिक्षण कार्यक्रम से लम्बा जुड़ाव रहा है जिसके तहत बाल वैज्ञानिक के अध्यायों का लेखन और प्रशिक्षण देने का कार्य किया है। *एकलव्य* द्वारा जीवों के क्रियाकलापों पर आपकी तीन किताबें प्रकाशित। शौकिया फोटोग्राफर, लोक भाषा में विज्ञान लेखन व विज्ञान शिक्षण में रुचि।

सम्पादन: सुशील जोशी: *एकलव्य* द्वारा संचालित स्रोत फीचर सेवा से जुड़े हैं। विज्ञान शिक्षण व लेखन में गहरी रुचि।

सन्दर्भ:

1. *जर्नल ऑफ प्लांट इकॉलॉजी:* इफेक्ट ऑफ फ्लोरल सेक्सुअल इन्वेस्टमेंट एंड डाईकोगैमी ऑन फ्लोरल लॉन्जेविटी

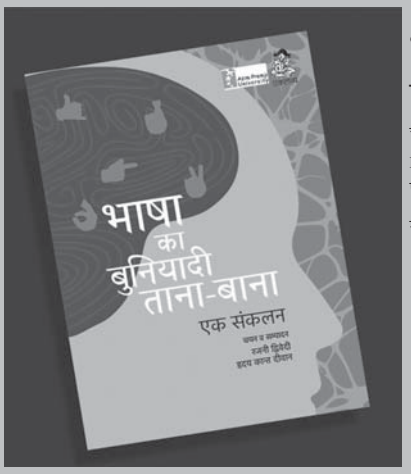

भाषा का बुनियादी ताना-बाना - एक संकलन

चयन व सम्पादन – रजनी द्विवेदी, हृदय कान्त दीवान

ISBN: 978-93-87926-43-1

पेपरबैक; पेज – 240 (पेपरबैक)

मूल्यः ₹ 200/-

Azim Premji University

एकलव्य

अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय, बेंगलुरु एवं एकलव्य फाउंडेशन का संयुक्त प्रकाशन।

“भाषा का यह अनोखा इन्सानी खज़ाना, जो हम सबके पास है, हमारी संस्कृति व हमारे कल्पनाशील बौद्धिक जीवन के बड़े हिस्से का बुनियादी तत्व है। इसी वजह से हम योजनाएँ बना पाते हैं, सृजनात्मक कला कर्म करते हैं और जटिल समाजों का निर्माण कर लेते हैं।”

- नोम चॉमस्की (इसी किताब से...)

ई-बुक
भी उपलब्ध
₹100/-

· तो इन्सान की भाषा क्यों खास है?
· भाषा के डिज़ाइन फीचर्स क्या होते हैं?
· इन्सान भाषा कैसे सीखते हैं?
· भाषा किस तरह से महज़ संवाद के माध्यम से आगे जाते हए संस्कृति और पहचान का अभिन्न हिस्सा बन जाती है?
· वर्चस्व की राजनीति किस तरह भाषाओं के बीच नए-नए समीकरण बनाती रहती है?

इन तमाम विषयों पर विचारपूर्ण आलेखों का संकलन।

ऑर्डर करने के लिए सम्पर्क करें - +91 755 297 7770-71-72-73; books@eklavya.in

www.eklavya.in | www.pitarakart.in

अजगर की शरीर-क्रिया की समझ के फायदे

विपुल कीर्ति शर्मा

पायथन मोलुरस

24 दिसम्बर को भरतपुर के केवलादेव नेशनल पार्क में प्रवेश लेते हुए सुबह के साढे ग्यारह बज रहे थे। इसके बावजूद सूर्य नदारद था। घने कोहरे के कारण चेन्नई से आई छह सदस्यीय फोटोग्राफर्स की एक टीम, पक्षियों के फोटो खींचने की बजाय अपना समय गप्पे मारने में लगा रही थी। एक घण्टे बाद धूप खिल गई परन्तु अधिकांश पक्षी पेट-पूजा कर घरौंदों में लौट गए थे और कुछ बचे-खुचे आराम फरमा रहे थे। मेरी निगाहें सड़क के दोनों ओर घनी झाड़ियों के बीच कुछ और ही खोज रही थीं। तभी मैदान जैसे खुले हिस्से में कुछ हलचल दिखी। ठण्डे बिलों में दुबके अजगर धूप खिलते ही धूप का मज़ा लेने बिलों से बाहर आने लगे थे।

भरतपुर बर्ड सेंक्चुरी या केवलादेव नेशनल पार्क या घाना नेशनल पार्क राजस्थान में स्थित यूनेस्को द्वारा घोषित संरक्षित इलाका प्रवासी पक्षियों के लिए स्वर्ग है। अक्टूबर से फरवरी माह तक प्रवासी पक्षियों की चार सौ से भी ज़्यादा प्रजातियों को

यहाँ देखा जा सकता है। फरवरी के अन्तिम सप्ताह तक अधिकांश प्रवासी पक्षी विदा ले लेते हैं, परन्तु अनेक स्थानीय पक्षियों को आप फिर भी यहाँ साल भर देख सकते हैं।

यद्यपि केवलादेव नेशनल पार्क, पक्षियों के लिए ज़्यादा प्रसिद्ध है, परन्तु यहाँ 25 प्रकार के स्तनधारी, 23 प्रकार के सरीसृप, 5 प्रकार के उभयचर एवं अनेक प्रकार की मछलियाँ और कीट-पतंगे भी पाए जाते हैं। आप अगर भाग्यशाली हुए तो सर्दियों की दोपहर में आपको धूप सेंकते हुए अजगर भी मिल जाएँगे। और यदि आपका भाग्य कुलांचे भर रहा हो तो अजगर को शिकार करते हुए भी देख पाएँगे। 2017 में केवलादेव नेशनल पार्क में अजगरों पर किए गए एक अध्ययन से ज्ञात होता है कि यहाँ अजगरों की आबादी कम-से-कम 80 है। 29 वर्ग किलोमीटर के क्षेत्रफल वाले नेशनल पार्क के लिए यह बेहद अच्छी खबर है।

ये कौन-से अजगर हैं?

केवलादेव नेशनल पार्क में पाए जाने वाले अजगर का वैज्ञानिक नाम *पायथन मोलुरस* है। सामान्य रूप से इन्हें भारतीय अजगर या इण्डियन रॉक पायथन या एशियन रॉक पायथन भी कहते हैं। यह एक बड़े आकार का साँप है। केवलादेव नेशनल पार्क में 10-12 फीट के अजगर देखने को मिलते हैं। *पी. मोलुरस* पूरे भारत में पाए जाते हैं। वैज्ञानिकों ने भौगोलिक और कुछ शारीरिक लक्षणों के आधार पर इन्हें दो उप-प्रजातियों में बाँटा है। *पी. मोलुरस* भारत, पाकिस्तान, श्रीलंका और नेपाल में पाए जाते हैं जबकि कुछ बड़े आकार की उप-प्रजाति *पायथन मोलुरस बिविटेटस* या बर्मिस पायथन कहलाती है जो म्यांमार, चीन तथा इण्डोनेशिया में पाई जाती है।

पी. मोलुरस हल्के रंग के अजगर होते हैं जिनका औसत वज़न 90 कि.ग्रा. तक होता है। ये पेड़ पर चढ़ने या पानी में तैरने में भी माहिर होते हैं। प्रजनन काल के दौरान ही ये जोड़े में दिखते हैं वरना इन्हें अकेले रहना ही पसन्द है।

होमियोस्टेसिस यानी समस्थिति

राजस्थान की सर्दियाँ और गर्मियाँ भीषण होती हैं। यहाँ साल के अधिकांश समय दिन और रात के तापमान में बहुत ज़्यादा अन्तर होता है। वातावरण का तापमान कैसा भी हो, मानव शरीर का तापमान 98.6°F या 37.0°C होता है। अपेक्षाकृत स्थिर या नियत आन्तरिक वातावरण को बनाए रखने की प्रवृत्ति को होमियोस्टेसिस (समस्थिति) कहते हैं। शरीर में अनेक ऐसे कारक हैं जिनकी मात्रा को नियत रखना बेहद आवश्यक होता है, उसमें से तापमान केवल एक कारक है। उदाहरण के लिए हमारे रक्त में ग्लूकोज़ की

मात्रा, आयनों की सान्द्रता तथा pH का सामान्य होना कार्यिकी के लिए बेहद आवश्यक है। सामान्य क्रिया-कलापों के दौरान भी शरीर में स्थिति बदलती रहती है। जब हम सामान्य भोजन भी करते हैं तो पाचन के पश्चात् कार्बोहाइड्रेट सरल शर्करा में बदलकर रक्त वाहिनियों में पहुँचकर रक्त में शर्करा की सान्द्रता को बढ़ा देते हैं। इसी प्रकार व्यायाम करने से शरीर का तापमान बढ़ जाता है। इन बदलावों से वापिस स्थिर स्थिति में आने के लिए आम तौर पर शरीर नकारात्मक प्रतिक्रिया (नेगेटिव फीडबैक) लूप अपनाता है। अर्थात यह क्रिया प्रारम्भ करने वाली संवेदनाओं के विपरीत ही कार्य करता है। अगर आपके शरीर का तापमान जॉगिंग के दौरान बहुत अधिक हो जाता है तो नकारात्मक प्रतिक्रिया लूप द्वारा शरीर का तापमान 98.6°F या 37.0°C की ओर नीचे लाने का प्रयास किया जाता है।

कैसे रखते हैं तापमान सामान्य?

यह जानने के लिए हमें मानव शरीर की ताप नियमन की कार्यिकी को समझना पड़ेगा। सबसे पहले उच्च तापमान का पता शरीर के सेंसर्स द्वारा लगाया जाता है, जो मुख्य रूप से त्वचा पर पाई जाने वाली संवेदी कोशिकाएँ होती हैं। इनमें संवेदनाओं को ग्रहण करने के लिए मस्तिष्क से तंत्रिकाएँ आती हैं। तंत्रिकाओं से मस्तिष्क में स्थित तापमान नियामक नियंत्रण केन्द्र (हाइपोथेलेमस) को सन्देश भेजा जाता है जो शरीर का तापमान नीचे गिराने के लिए त्वचा की रक्त वाहिनियों को फैला देता है तथा पसीने को निकालता है।

इसके विपरीत जब ठण्डे मौसम में आप गर्म कपड़ों के बगैर निकलते हैं, तो मस्तिष्क में तापमान केन्द्र (हाइपोथेलेमस) को उन प्रतिक्रियाओं को प्रारम्भ करना पड़ता है जो शरीर को गर्म रख सकें। ऐसी परिस्थितियों में आपके रोंगटे (बाल) खड़े हो जाते हैं जिससे हवा को बालों के बीच कैद करके, त्वचा की गर्मी को बाहर निकलने से बचाया जा सके। इसी प्रक्रिया में त्वचा में रक्त का प्रवाह भी कम हो जाता है। ठण्ड में काँपना भी मांसपेशियों द्वारा अधिक गर्मी पैदा कर शरीर के तापमान को बढ़ाने का एक तरीका है।

चित्र-1: *शरीर को गर्म रखने के लिए हमारे रोंगटे (बाल) खड़े हो जाते हैं।*

मनुष्यों के समान सभी जन्तु अपने शरीर के तापमान को एक सीमा तक सीमित नहीं रख सकते हैं। फिर भी प्रत्येक जन्तु को वातावरण में बदलाव के अनुसार शरीर के तापमान को कुछ हद तक नियंत्रित करना ही पड़ता है, नहीं तो बेहद ठण्ड के दौरान शरीर का पानी बर्फ में बदल जाएगा या बेहद ज़्यादा गर्मी से एंज़ाइम नष्ट होकर कार्यिकी को बिगाड़ देंगे।

जन्तु अपने शरीर के तापमान को कैसे नियंत्रित रखते हैं, के आधार पर उन्हें मोटे तौर पर दो समूहों में विभाजित किया जा सकता है - एण्डोथर्म (होमियोथर्म) और एक्टोथर्म (पाइकिलोथर्म)।

मनुष्य, शेर-चीते, ध्रुवीय भालू, पेंगुइन, चील-कौए मतलब सभी स्तनधारी एवं पक्षी एण्डोथर्मी होते हैं।

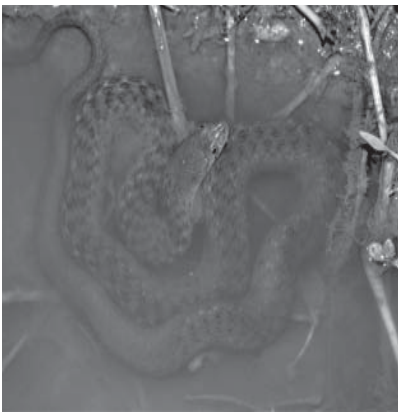

फ़ोटो: विपुल कीर्ति शर्मा

चित्र-2: *पानी के अन्दर जाकर शरीर के तापमान को नियंत्रित करता हुआ चैकर्ड कीलबैक साँप।*

ये सभी अपने शरीर का तापमान एक जैसा बरकरार रखने के लिए शरीर की आन्तरिक व्यवस्था पर निर्भर रहते हैं। ये ठण्ड के दिनों में शरीर का तापमान नियत बनाए रखने तथा शरीर में गर्मी की क्षति-पूर्ति के लिए चयापचय से गर्मी उत्पन्न करते हैं। इसलिए एक एण्डोथर्म जन्तु के शरीर का तापमान, पर्यावरण के तापमान से स्वतंत्र या काफी हद तक अप्रभावित रहता है। एक सामान्य नियम के रूप में यह भी ध्यान रखें कि एक्टोथर्म की तुलना में एण्डोथर्म में चयापचय की दर हमेशा ज़्यादा होती है। इन्हें शरीर का तापमान एक जैसा बनाए रखने के लिए आवश्यक ऊर्जा भोजन से प्राप्त होती है, बाहर का तापमान कम हो या ज़्यादा, इसलिए उन्हें हमेशा भोजन खोजते देखा जा सकता है।

इसके विपरीत अजगर, छिपकली (सरीसृप), मेंढ़क (उभयचर), मछलियाँ और अकशेरुकी जन्तु एक्टोथर्म होते हैं। इनके शरीर का तापमान मुख्यतः बाहरी ताप स्रोतों (सूर्य का प्रकाश) पर निर्भर करता है। जब भी वातावरण का तापमान बढ़ता या घटता है, इनके शरीर के तापमान में भी वैसे ही बदलाव आते हैं। ऐसा नहीं है कि एक्टोथर्म चयापचय से गर्मी उत्पन्न नहीं करते हैं, परन्तु विशिष्ट आन्तरिक तापमान बनाए रखने के लिए एक्टोथर्म गर्मी के उत्पादन को बढ़ा नहीं सकते हैं। चूँकि वे शरीर से ज़्यादा गर्मी उत्पन्न नहीं कर सकते

चित्र-3: *विभिन्न सरीसृप धूप सेंकते हुए।*

इसलिए आदतन उनके व्यवहार में धूप सेंकना या छांव, पानी या बिलों में चले जाना आदि शुमार होता है।

विषम परिस्थितियों में रहने वाली कुछ जन्तुओं की प्रजातियों ने एण्डोथर्म और एक्टोथर्म के बीच की विभाजन रेखा को धुँधला कर दिया है। शीत निद्रा (हाइबरनेट) करने वाले ध्रुवीय भालू जब सक्रिय बने रहते हैं तो एण्डोथर्मिक होते हैं, किन्तु जब वे शीत निद्रा में जाते हैं तो एक्टोथर्म से मिलते-जुलते व्यवहार को प्रदर्शित करते हैं।

ज़रूरी है शरीर का तापमान बनाए रखना

अधिकांश जन्तुओं के लिए एक सीमा तक ही तापमान में बदलाव सहने योग्य होता है। एक ओर बेहद ठण्डे प्रदेशों में 32°F या 0°C तापमान पर पानी जमकर बर्फ बन जाता है तो कोशिका के अन्दर बर्फ जमने पर सामान्य तौर पर कोशिका झिल्ली नष्ट हो जाती है। दूसरी ओर जब शरीर का तापमान 104°F या 40°C पर पहुँचता है तो कोशिका में पाए

जाने वाले प्रोटीन एवं एंज़ाइम की संरचना में विकृति आ जाती है। वे सामान्य कार्य नहीं कर पाते हैं। एण्डोथर्मल जन्तुओं और मानव में तो शरीर का तापमान एक बेहद संकीर्ण दायरे में ही बना रहता है।

धूप सेंकना कई जन्तुओं में आराम करने की बजाय, एक बेहद आवश्यक व्यवहार है जो उनकी सामान्य कार्यिकी को बनाए रखता है। विशेष तौर पर ज़मीन पर पाए जाने वाले सरीसृपों में धूप सेंकना बेहद ठण्डे वातावरण में खुद को बचाने का तरीका है क्योंकि वे हमारे समान अपने शरीर का तापमान नियत करने में असमर्थ होते हैं।

तबाही में अजगरों की भूमिका

अमेरिका के फ्लोरिडा में दक्षिणी छोर पर विशालकाय दलदली भूमि पर एवरग्लेड्स नेशनल पार्क स्थित है। दलदली भूमि सैकड़ों प्रकार के जीव-जन्तुओं का ठोर-ठिकाना है। इनमें से कुछ जन्तु प्रजातियाँ तो स्थानीय हैं और केवल एवरग्लेड्स में ही पाई जाती हैं। बर्मिस पायथन बड़ी संख्या में फ्लोरिडा (अमेरिका) के एवरग्लेड्स नेशनल पार्क में भी पाए जाते हैं। पिछले 40 वर्षों में एवरग्लेड्स में बर्मिस अजगर ने तबाही मचा रखी है। बाह्य प्रजाति (इन्वेज़िव स्पिशीज़) होने के बावजूद बर्मिस पायथन को एवरग्लेड्स बहुत रास आया है और मार्श रेबिट, रेकून्स, ओपोस्सम जैसे छोटे स्तनधारी जन्तु लगभग दिखना बन्द हो गए हैं क्योंकि अजगरों ने 90-99 प्रतिशत आबादी को अपना आहार बना लिया है। ऐसा माना जाता है कि विदेशी पालतू जन्तुओं का व्यापार करने वालों ने दक्षिण-पूर्व एशिया से बर्मिस पायथन को मँगाया होगा और फ्लोरिडा में बेच दिया होगा। इनमें से कुछ ने इन्हें एवरग्लेड्स नेशनल पार्क में छोड़ दिया होगा। अब ये अजगर नेशनल पार्क में बहुत फल-फूल रहे हैं और वहाँ के स्थानीय छोटे स्तनधारियों की आबादी को सफाचट करके ईकोतंत्र को तबाह कर रहे हैं।

सन् 2009 दिसम्बर से जनवरी 2010 के बीच एवरग्लेड्स में कड़ाके की और लम्बी अवधि तक ठण्ड पड़ी। उसी दौरान अजगरों पर शोध करने वाले वैज्ञानिकों ने पाया कि दक्षिण एशिया के बर्मिस अजगर जो आम तौर पर गर्म मौसम के अनुकूल होते हैं, वे एवरग्लेड्स में दिसम्बर एवं जनवरी के दौरान 0°C के तापमान पर भी ज़िन्दा रह जाते हैं। ये 16°C से कम तापमान पर पाचन बन्द कर देते हैं और तापमान जैसे ही 0°C के नीचे जाता है तो मर जाते हैं। ठण्ड में फ्लोरिडा का औसत तापमान 12°C हो जाता है और अजगर धूप सेंकने के लिए बिलों से बाहर आ जाते हैं जैसा कि वे दक्षिण एशियाई देशों में आदतन करते हैं। परन्तु तेज़ बहती ठण्डी हवा में तापमान तेज़ी-से गिरता

चित्र-4: *नेशनल पार्क में बर्मिस अजगर एक घड़ियाल को खाते हुए।*

है और इस वजह से ठण्ड की चपेट में आकर 2010 में अनेक अजगर मारे गए। जो बच गए थे, उन्होंने पेशियों में कम्पन और घर्षण द्वारा ऊर्जा उत्पन्न करके स्वयं एवं अण्डों को वैसे ही बचाया जैसे हम ठण्ड में अक्सर हाथ रगड़कर गर्मी उत्पन्न करते हैं। अनेक अजगर जिन्होंने गहरे बिलों में गर्मी वाले स्थानों को खोज लिया, वे बच गए और ठण्ड के जाते ही फिर से दलदली भूमि पर राज करने लगे। 2013 में रेडियो ट्रान्समिटर लगाकर छोड़े गए मार्श रेबिट का समूह एक वर्ष बाद घटकर 33 प्रतिशत ही रह गया जो यह दर्शाता है कि 2010 के प्रकोप के बाद अजगरों की संख्या में फिर से वृद्धि हो गई थी।

अजगर से सीखें बहुत कुछ

"अजगर करे न चाकरी" कहकर हमने अजगरों को बदनाम कर दिया है। जहाँ शेर-चीते अचानक हमला करके या तेज़ी-से पीछा करके शिकार दबोच लेते हैं, अजगर की रणनीति वातावरण में छुपकर बैठने और इन्तज़ार करके शिकार को अपने पास आने पर दबोचने की होती है। किन्तु वैज्ञानिक अजगर की जिस खूबी पर फिदा हैं, वह है अंगों को फिर से बना सकने की क्षमता। अक्सर अजगरों को महीनों तक भूखा रहना पड़ता है। फिर अचानक शिकार मिल जाता है और अजगर ऐसे मौके को हाथ से जाने नहीं देते। वे अपनी मज़बूत पेशियों से शिकार का दम घोंट देते हैं और अपने मुँह के आकार से भी बड़े जन्तु को निगल जाते हैं।

शिकार मिलने के पूर्व भूखे अजगर की आँत सिकुड़कर खाली पाईप के समान हो जाती है। शिकार मिलते ही अजगर के अंगों को नया जीवन मिलता है और विस्फोटक गति से अंगों का पुनर्निर्माण होता है। एक ही दिन के अन्दर आँत की दीवारें मोटी हो जाती हैं तथा पाचन रस बनाने

की ग्रन्थियाँ कार्यरत हो जाती हैं। पचे भोजने के अवशोषण के लिए आँत में बड़ी-बड़ी विलाई (चुन्नटें) दिखने लगती हैं। यकृत, अग्नाशय, हृदय और गुर्दे आकार में डेढ़ गुना होकर कार्य करने लगते हैं। फिर खाने के चार दिनों के भीतर ही पुनः भूख के दौर जैसे हालात बनने लगते हैं, और दो सप्ताह में ही वे अंग फिर से सिकुड़ जाते हैं। वैज्ञानिकों ने पाया है कि जब भोजन प्राप्त होने पर अजगर की गतिविधियाँ नाटकीय रूप से बढ़ जाती हैं तो सभी तंत्र में जीन की सक्रियता भी बेहद तेज़ हो जाती है।

खाना मिलने व खाने के दौरान वैज्ञानिकों ने अजगर के अंगों की क्रियात्मकता का तुलनात्मक अध्ययन किया। अनेक प्रकार के जीन अंगों की वृद्धि करने के लिए उत्तरदायी पाए गए। कुछ वैज्ञानिकों की दिलचस्पी उन जीन्स में थी जो अक्सर तनाव के समय कोशिका की रक्षा करते हैं। इन जीन्स को पहले केवल कैंसर और बुढ़ापे से जोड़कर देखा जाता था। तनाव के समय सक्रिय जीन को बन्द करके तथा अंगों की वृद्धि करने वाले जीन्स को चालू रखने पर अंगों को फिर से सिकुड़ने वाली प्रक्रिया में जाते देखा गया है। वैज्ञानिकों को लगता है कि उन्हें इस प्रक्रिया को समझकर कशेरुकियों में अंगों के पुनर्जन्म और निर्माण प्रारम्भ करने का स्विच मिल गया है।

अब प्रश्न उठता है कि इतने बड़े परिवर्तन को नियंत्रित कौन करता है। वैज्ञानिकों ने पाया कि अजगर के रक्त में वह शक्ति है जो अंगों को पुनःनिर्माण करने पर मजबूर कर देती है। शिकार निगलने के तुरन्त बाद अजगर के रक्त से निकाले गए पानी जैसे रंगहीन प्लाज़्मा को पृथक कर प्रयोगशाला में सम्वर्धन के लिए रखी गई चूहे की कोशिकाओं को दिया जाता है तो वे भी अचानक वृद्धि करने लगती हैं। चूहे की कोशिकाओं में भी वही जीन वृद्धि के लिए उत्तरदायी पाए गए हैं जो साँपों में पाए जाते हैं। वृद्धि का सन्देश कोई भी दे रहा हो, अजगर एवं स्तनधारियों में असर एक जैसे ही प्रतीत होते हैं। अंगों की वृद्धि करने से शायद हमें कोई फायदा न हो परन्तु जीन्स कैसे वृद्धि को पुनः रोकते हैं, यह कैंसर की वृद्धि को रोकने का तरीका हो सकता है। भोजन करने के बाद हमारी कार्यिकी में क्या परिवर्तन होता है, यह अजगरों से बेहतर समझा जा सकता है और इससे मधुमेह और मोटापे का इलाज खोजा जा सकता है।

सरीसृपों का जीवन-इतिहास और उनके तौर तरीके परिवेश के तापमान में उतार-चढ़ाव से उत्पन्न चुनौतियों से निपटने के लिए विकसित हुए हैं। कई सरीसृप प्रजातियों में प्रजनन गतिविधि गर्म मौसम में सम्पन्न होती है क्योंकि ज़्यादा तापमान सन्तति के विकास में सुविधा देता है। इनके अण्डे देने के

चित्र-5

स्थान का तापमान सन्तति के शरीर के आकार, संरचना, गति और सीखने की क्षमता को निर्धारित करता है। जब मादा सरीसृप अण्डे देती हैं तो वे इस बात का ध्यान रखती हैं कि बच्चों को उपयुक्त तापमान उपलब्ध हो। एक व्यापक जलवायु वाले क्षेत्र में रहने वाले सरीसृप घोंसले की गहराई में परिवर्तन करके, घोंसले के ऊपर धूप और छाया बहुत ही चतुराई से नियंत्रित करते हैं जिससे तापमान एक जैसा बना रहे। तापमान में अप्रत्याशित बदलाव नवजात बच्चों में महत्वपूर्ण परिवर्तन ला सकते हैं। उदाहरण के लिए, एक गर्म घोंसले में अण्डों से बच्चे जल्दी निकलेंगे, वे ज़्यादा चंचल होंगे व जल्दी-से वृद्धि करेंगे जबकी एक ठण्डे घोंसले में छोटी, धीमी व कमज़ोर सन्तान पैदा होंगी। तापमान में अप्रत्याशित उतार-चढ़ाव की स्थितियों के कारण कछुओं और मगरमच्छों में एक और अनुकूलन हुआ है, तापमान आधारित लिंग निर्धारण।

आधुनिक सरीसृप करोड़ों वर्षों के परिणाम हैं। भरतपुर में जब भीषण गर्मी पड़ती है तो वेटलैण्ड पूरी तरह से सूख जाता है, फिर भी अजगर बच जाते हैं। वैश्विक गर्माहट, आवास का नष्ट होना और प्रदूषण के कारण जैव-विविधता तेज़ी-से घट रही है। आशा है कि इस सबके बावजूद अजगर अपना अस्तित्व बरकरार रख पाएँगे।

विपुल कीर्ति शर्मा: शासकीय होल्कर विज्ञान महाविद्यालय, इन्दौर में प्राणिशास्त्र के वरिष्ठ प्रोफेसर। इन्होंने 'बाघ बेड़स' के जीवाश्म का गहन अध्ययन किया है तथा जीवाश्मित सीअर्चिन की एक नई प्रजाति की खोज की है। नेचुरल म्यूज़ियम, लंदन ने उनके सम्मान में इस प्रजाति का नाम उनके नाम पर स्टीरियोसिडेरिस कीर्ति रखा है। वर्तमान में वे अपने विद्यार्थियों के साथ मकड़ियों पर शोध कार्य कर रहे हैं। प्राणीशास्त्र में पीएच.डी. के अतिरिक्त बायोटेक्नोलॉजी में भी स्नातकोत्तर। वे विज्ञान पर आधारित फिल्मों के लेखक, निर्माता और निदेशक भी हैं। वर्ष 2018 व 2019 में भारत सरकार द्वारा आयोजित इनकी फिल्मों 'प्रिडेटिंग द प्रिडेटर' तथा 'वॉन्टेड ब्राइड' को क्रमश: आठवें और नवें नेशनल साइंस फिल्म फेस्टीवल ऑफ इंडिया में 'गोल्डन बीवर अवॉर्ड' से नवाज़ा गया है।

प्रतिबिम्ब: वास्तविक या आभासी?

उमा सुधीर

मुझे हमेशा से अपने वैज्ञानिक मिज़ाज पर गर्व रहा है - मैं हर चीज़ पर सवाल उठाती हूँ, और किसी कथन को स्वीकार करने से पहले खुद आज़माकर देखना चाहती हूँ। और जिन चीज़ों को मैं अन्य लोगों के अन्धविश्वास मानती हूँ, उन्हें मैं काफी बेरहमी से खारिज करती हूँ। मुझे हाल ही में इस बात ने चौंका दिया कि खुद मेरे अन्धविश्वास हैं और कई ऐसे विश्वास हैं जिन पर मैं कभी सवाल नहीं उठाती। कहते हैं न, गर्व को हमेशा गर्त मिलता है!

तो वे कौन-सी चीज़ें हैं जिन पर मैं सवाल नहीं उठाती, बल्कि आँख मूँदकर उन्हें मानती हूँ? जो लोग मुझे जानते हैं, उन्हें तो ये बातें पता ही होंगी - मैं वैज्ञानिक सिद्धान्तों और नियमों को लगभग आस्था की तरह स्वीकार करती हूँ। थोड़ा विस्तार से बताती हूँ। मुझे लगता है कि मुझे वैज्ञानिक ज्ञान की सीमाएँ पता हैं। मैं मापन के दौरान होने वाली त्रुटियों के प्रति भी जागरूक हूँ और जानती हूँ कि वैज्ञानिक ज्ञान अस्थायी (आज़माइशी) होता है। लेकिन मैं शिद्दत-से महसूस करती हूँ कि वैज्ञानिक ज्ञान की आज जो भी

अवस्था हो, वह फिलहाल हमारे पास किसी भी प्राकृतिक परिघटना की सर्वोत्तम व्याख्या होती है। अलबत्ता, हो सकता है कि कल उसका स्थान कोई बेहतर व्याख्या ले ले।

किन्तु कुछ माह पहले मुझे यह जानने का मौका मिला कि गलत व्याख्या भी नए ज्ञान को जन्म दे सकती है और मैं इस तरह की खोजबीन से कटी रही थी क्योंकि कई चीज़ें ऐसी थीं जिनकी जाँच के बारे में मैंने कभी सोचा ही नहीं था। खैर, कम-से-कम एक क्षेत्र में मुझे समझ में आ गया है कि मेरी खोजबीन कितनी सतही थी, और मैं नहीं जानती कि कितनी अन्य चीज़ों से मैं अनभिज्ञ हूँ।

बात प्रतिबिम्ब निर्माण की है। और मैं चाहती हूँ कि मेरे पाठक यह समझ पाएँ कि चल क्या रहा है। इसलिए पहले मैं सरल चीज़ों से शुरू करूँगी। हो सकता है कि जो लोग इन बातों से परिचित हैं, उन्हें थोड़ी बोरियत महसूस हो लेकिन मेरा दावा है कि लेख के अन्त तक जानकार लोगों को भी कुछ नया सीखने को मिलेगा।

वस्तु दर्पण में कैसे दिखती है?

कोई वस्तु या तो स्वयं प्रकाश उत्सर्जित करती है या वह उस पर पड़ने वाले प्रकाश को परावर्तित कर देती है। हालाँकि, हम प्रकाश के व्यवहार को समझने के लिए कुछ ही किरणों का सहारा लेते हैं लेकिन यह नहीं भूलना चाहिए कि वस्तु से निकला प्रकाश कई दिशाओं में फैलता है। यदि इस वस्तु से उत्सर्जित अथवा परावर्तित प्रकाश हमारी आँखों तक पहुँचता है तो वह वस्तु हमें

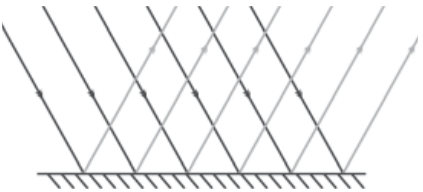

नियमित परावर्तन

अनियमित परावर्तन

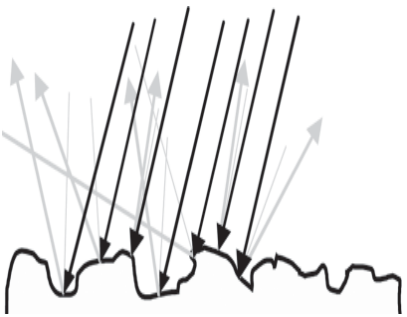

***चित्र-1: प्रकाश का नियमित व अनियमित परावर्तन** - मान लीजिए प्रकाश की कई समान्तर किरणें किसी दर्पण या चिकनी धातुई सतह पर पड़ती हैं तो ज़्यादातर किरणें परावर्तन का एक निश्चित पैटर्न दिखाती हुई परावर्तित होती हैं जिसकी वजह से स्पष्ट बिम्ब बनता है। दर्पण के विपरीत किसी दीवार-फर्श की चिकनी व समतल दिखाई देने वाली सतह से टकराने वाली किरणें भी परावर्तन के नियमों के मुताबिक व्यवहार करती हैं लेकिन काफी सारी किरणें अलग-अलग दिशाओं में बिखर जाती हैं। इसलिए इस सतह से किसी तरह का स्पष्ट बिम्ब नहीं बन पाता। यहाँ दिखाए दोनों चित्रों में काले तीर वाली रेखाएँ आपतित किरणों और धूसर तीर वाली रेखाएँ परावर्तित किरणों को दर्शा रही हैं। बिना तीर वाली धूसर रेखाएँ अभिलम्ब प्रदर्शित करती हैं।*

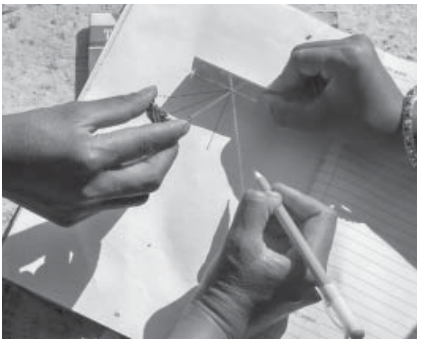

चित्र-2: परावर्तन के नियमों की पड़ताल - आम तौर पर माध्यमिक स्तर के विद्यार्थी दो दर्पण के टुकड़ों और पेंसिल-स्केल की मदद से किए जाने वाले प्रयोग से परावर्तन, अभिलम्ब आदि समझते हैं। एक दर्पण पट्टी पर कागज़ लपेटकर एक पतली झिर्री से प्रकाश की लकीर या 'किरण' दूसरे दर्पण पर डालते हैं। और इस 'किरण' के परावर्तन को देखते हैं। थोड़ा अभ्यास होने पर आपतन कोण व परावर्तन कोण को भी माप लेते हैं। खास बात यह है कि इस दौरान बच्चे दोनों दर्पण को थोड़ा हिला-डुलाकर क्या होता है, यह भी जानने की कोशिश करते हैं। जिसकी वजह से परावर्तित किरण में आने वाले बदलाव को भी देख पाते हैं।

दिखाई देगी (बशर्ते कि हम ध्यान दे रहे हों)।

जब हम वस्तुओं को दर्पण में देखते हैं, तब क्या होता है? वस्तु से उत्सर्जित या परावर्तित प्रकाश किरणों को दर्पण द्वारा परावर्तित होकर हमारी आँखों तक पहुँचना चाहिए। पहले देखते हैं कि समतल दर्पण में यह कैसे होता है और फिर अन्य स्थितियों पर विचार करेंगे। समतल दर्पण उस पर पड़ने वाले अधिकांश प्रकाश को परावर्तित कर देता है। और इस पर पड़ने वाली समान्तर किरणें परावर्तन के बाद भी समान्तर रहेंगी। (परावर्तन के नियम याद कीजिए - नियम नं. 1 आपतित किरण अभिलम्ब के साथ जितना कोण बनाती है, परावर्तित किरण भी अभिलम्ब के साथ उतना ही कोण बनाएगी। नियम नं. 2 आपतित किरण, अभिलम्ब और परावर्तित किरण एक ही तल में होते हैं। दर्पण की सतह के किसी भी बिन्दु पर लम्बवत रेखा को उस बिन्दु पर अभिलम्ब कहते हैं। बॉक्स 1 भी देखिए।)

तो फिर हमें वस्तु दर्पण में कैसे दिखती है? इस वस्तु पर कोई एक बिन्दु ले लीजिए। प्रकाश की किरणें इस बिन्दु से कई दिशाओं में निकलेंगी। (यदि वह वस्तु प्रकाश का

बॉक्स-1: किरणें, अभिलम्ब व तल

एक ही तल में होने का मतलब यह है कि दर्पण के किसी भी बिन्दु पर आपतित किरण और अभिलम्ब मिलकर एक तल को परिभाषित करते हैं और परावर्तित किरण भी इसी तल में रहेगी। यदि हम दर्पण को थोड़ा घुमा दें तो अभिलम्ब की दिशा बदल जाएगी। अब यदि आपतित किरण वही रखें, तो आपतित किरण और अभिलम्ब मिलकर एक नया तल बनाएँगे। परावर्तित किरण को इस नए तल में आगे बढ़ना होगा। इस वजह से परावर्तित किरण एक अलग रास्ते पर जाएगी।

स्रोत नहीं है, तो उसके हर बिन्दु पर पड़ने वाला प्रकाश कई दिशाओं में परावर्तित होगा)। इनमें से कुछ किरणें दर्पण से टकराएँगी और परावर्तित हो जाएँगी। और इन परावर्तित किरणों में से कुछ हमारी आँखों तक पहुँचेंगी। यदि उपरोक्त नियमों के अनुसार इन किरणों के मार्ग का चित्र बनाएँ तो आप देख ही सकते हैं कि ये परावर्तित किरणें एक-दूसरे से दूर जा रही हैं या अपसारी हैं - हमारा दिमाग यह व्याख्या कर लेता है कि ये किरणें दर्पण के पीछे किसी बिन्दु से आ रही हैं। इसीलिए हमें वस्तु दर्पण में दिखती है।

लगता तो ऐसा है कि वस्तु का प्रतिबिम्ब दर्पण की सतह के 'पीछे' है, हम जानते हैं कि दर्पण के 'अन्दर' कोई जगह नहीं है कि हमें वह सारी गहराई दिखे जो हमें प्रतीत होती है। तो इसे आभासी प्रतिबिम्ब कहते हैं। यह प्रतिबिम्ब वस्तु की साइज़ का ही होता है, अर्थात यदि हम वस्तु को दर्पण के नज़दीक रखें तो उसका प्रतिबिम्ब उस स्थिति के मुकाबले बड़ा होगा जब वस्तु को दर्पण से दूर रखा जाएगा।

अवतल दर्पण से बनते प्रतिबिम्ब

जब हम अवतल दर्पण में देखते हैं तो क्या होता है? अवतल दर्पण की

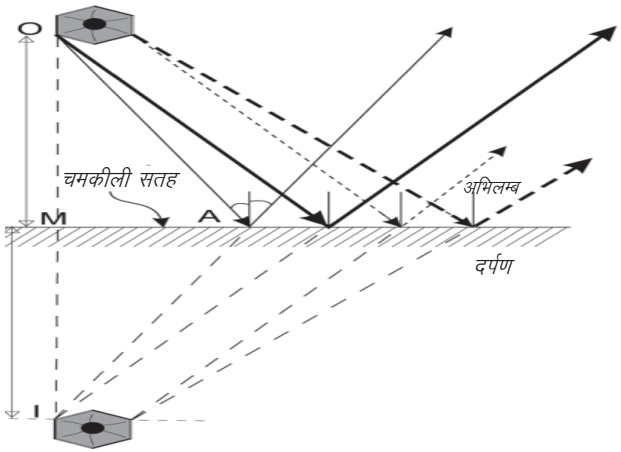

चित्र-3: *समतल दर्पण एक आभासी छवि बनाता है जो सरसरी तौर पर ऐसी प्रतीत होती है मानो दर्पण के भीतर कहीं मौजूद हो। यहाँ दिए चित्र में एक वस्तु (पेंसिल का सिरा) से निकलने वाली किरणों से इस बात को समझाने की कोशिश की जा रही है। वस्तु से निकलने वाली किरणें दर्पण की चमकीली सतह से टकराकर परावर्तित हो रही हैं। चमकीली सतह पर अभिलम्ब, आपतित किरण व परावर्तित किरणों को रेखांकित किया गया है। परावर्तित किरणों को यदि पीछे बढ़ाया जाए तो वे किसी एक बिन्दु पर जाकर मिल रही हैं। यही वह जगह है जहाँ हमें प्रतीत होता है कि उस बिन्दु का प्रतिबिम्ब हम देख रहे हैं।*

कल्पना एक खोखले गोले के हिस्से के रूप में की जा सकती है, जिसकी बाहरी सतह पर चांदी का पानी चढ़ाया गया हो। इसी वजह से हम खुद को इसकी अन्दर वाली चमकीली सतह में देखते हैं। लेकिन जब हम खुद को साधारण रूप से उपलब्ध किसी अवतल दर्पण में देखते हैं तो हमें जो प्रतिबिम्ब दिखता है, वह हमारे चेहरे की तुलना में बड़ा होता है। इसलिए ऐसे दर्पणों का उपयोग शेविंग मिरर या मेक-अप मिरर के रूप में किया जाता है। लेकिन वस्तु की तुलना में बड़ा प्रतिबिम्ब तभी दिखता है जब हम या वस्तु अवतल दर्पण के काफी पास में हों। ऐसा क्यों है कि इनमें कभी-कभी बड़ा प्रतिबिम्ब बनता है? यदि किरण-पथ चित्र बनाएँ, तो देखेंगे कि वक्राकार सतह परावर्तित किरणों को थोड़ा अलग ढंग से मोड़ती है। हमारी आँखों और दिमाग की युगलबन्दी एक बार फिर यह व्याख्या कर लेती है कि ये किरणें दर्पण के पीछे कहीं से आ रही हैं। लेकिन इस बार हमें वस्तु उसकी वास्तविक साइज़ से बड़ी दिखाई पड़ती है। अलबत्ता, अभी भी प्रतिबिम्ब दर्पण के 'अन्दर' ही कहीं है। यानी

बॉक्स-2: किरण रेखा-चित्र बनाने की सहूलियत के लिए

वैसे तो हर आपतित किरण के लिए परावर्तित किरण बनाने के लिए हम आपतन बिन्दु पर अभिलम्ब बनाकर अभिलम्ब से उतने ही कोण पर दूसरी ओर परावर्तित किरण बना सकते हैं। लेकिन गोलाकार दर्पणों के मामले में विभिन्न किरणों के लिए कुछ आसान-से नियमों का पालन करना सुविधाजनक है।

नियम 1: मुख्य अक्ष के समान्तर आ रही किरण परावर्तित होकर फोकस बिन्दु से गुज़रती है।

नियम 2: फोकस बिन्दु से आ रही किरण परावर्तन के बाद मुख्य अक्ष के समान्तर हो जाती है।

नियम 3: वक्रता केन्द्र से आने वाली किरण परावर्तित होकर उसी रास्ते लौट जाती है।

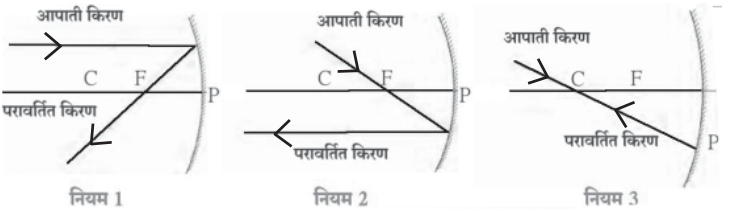

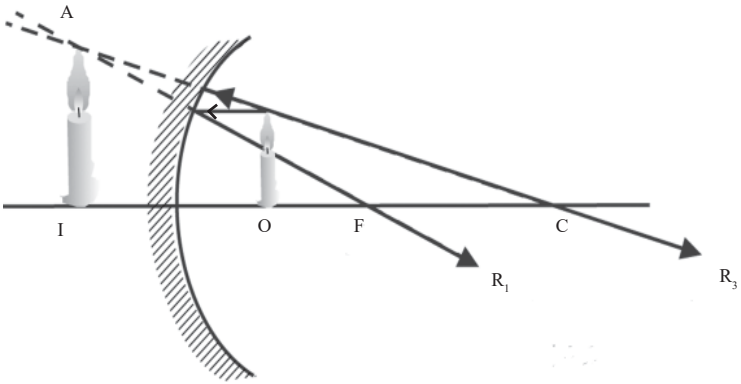

चित्र-4: *अवतल दर्पण में प्रतिबिम्ब बनाकर देखने के लिए किसी वस्तु को दर्पण से अलग-अलग दूरी पर रखकर, बनने वाला प्रतिबिम्ब आकार में छोटा है या बड़ा, सीधा है या उल्टा है जैसी बातों को समझ सकते हैं। किरणों के पथ बनाने से बिम्ब की प्रकृति की समझ पुख्ता होती जाती है और बिम्ब की व्याख्या करना आसान होता जाता है। यहाँ अवतल दर्पण व फोकस के बीच में मोमबत्ती को रखा गया है। दो किरणों की मदद से समझने की कोशिश करते हैं। मोमबत्ती की लौ से निकलने वाली किरण मुख्य अक्ष के समान्तर दर्पण से टकराकर, R_1 के रूप में फोकस बिन्दु से गुज़रती हुई जाती है। और दूसरी किरण दर्पण से ऐसी जगह टकराती है कि परावर्तित होने के बाद उसी रास्ते लौटते हुए R_3 के रूप में दर्पण के वक्रता केन्द्र से गुज़रती है। अब किरण R_1 और R_3 को पीछे बढ़ाने से यह पता चलता है कि प्रतिबिम्ब दर्पण के पीछे से आता हुआ लगता है, आकार से बड़ा भी है। इसके आधार पर कहा जा सकता है कि यह आभासी प्रतिबिम्ब है।*

इस बार भी हम जो देख रहे हैं, वह आभासी प्रतिबिम्ब है।

अब यदि हम इस दर्पण को दूर, और दूर ले जाएँ, तो एक अवस्था ऐसा आएगी कि हम एक साफ प्रतिबिम्ब पहचान पाने में असमर्थ रहेंगे। यदि दर्पण को और दूर ले जाएँ, तो अचानक हम खुद को दर्पण के अन्दर उल्टा देखने लगते हैं। और यह प्रतिबिम्ब वस्तु से छोटा भी हो सकता है और बड़ा भी। न सिर्फ यह प्रतिबिम्ब उल्टा होता है, हम इसे एक पर्दे पर भी प्राप्त कर सकते हैं (अर्थात प्रतिबिम्ब अब दर्पण के अन्दर और पीछे नहीं है, हमें वस्तु का प्रतिबिम्ब दर्पण के बाहर भी मिल सकता है)। जब हम पर्दे को दर्पण से अलग-अलग दूरी पर रखते हैं, तो एक बिन्दु ऐसा आता है जहाँ वस्तु का पैना चमकदार प्रतिबिम्ब बनता है। यह प्रतिबिम्ब कितना बड़ा होगा, यह तो इस बात पर निर्भर है कि वस्तु को दर्पण से कितना दूर रखा गया है लेकिन यह हमेशा उल्टा ही होगा। हम पर्दे को दर्पण से दूर या पास ले जाएँगे तो प्रतिबिम्ब धुँधला पड़ जाएगा। ऐसा क्यों होता है और उससे भी पहले सवाल तो यह है कि दर्पण के बाहर प्रतिबिम्ब बनता कैसे है। इन दोनों बातों की व्याख्या सर्वव्यापी

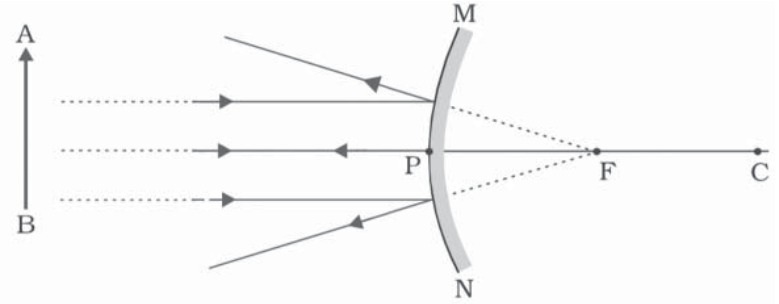

चित्र-5: *उत्तल दर्पण में बनने वाले प्रतिबिम्ब को समझने के लिए वस्तु को दर्पण से काफी दूर या अनन्त पर रखकर या दर्पण के वक्रता केन्द्र पर रखकर या दर्पण के काफी करीब रखकर बनने वाले बिम्ब के आकार आदि को देखा जा सकता है। यहाँ बतौर उदाहरण वस्तु को अनन्त पर रखकर किरणों के रेखाचित्र द्वारा बिम्ब कहाँ बन रहा है, यह समझने की कोशिश की जा रही है। जैसा कि चित्र से स्पष्ट है कि वस्तु से आने वाली किरणें दर्पण के पीछे फोकस पर इकट्ठा हो रही प्रतीत होती हैं। यानी बिम्ब आभासी है। यदि वस्तु को दर्पण के करीब रखा जाए तब भी बिम्ब दर्पण के पीछे फोकस पर ही बनेगा। कहना न होगा कि बिम्ब सीधा और आभासी होगा।*

किरण-पथ चित्र बनाकर की जा सकती है (देखें बॉक्स 2)। यह प्रतिबिम्ब जो दर्पण के बाहर बनता है उसे वास्तविक प्रतिबिम्ब कहते हैं। जैसा कि किरण-पथ चित्र से स्पष्ट है, वस्तु से आने वाली विभिन्न किरणें परावर्तन के बाद वास्तव में मिलती हैं जबकि आभासी प्रतिबिम्ब वहाँ बनता है जहाँ से ये किरणें आती हुई प्रतीत होती हैं।

अब ज़रा उत्तल दर्पण पर विचार करें। इन दर्पणों का उपयोग आम तौर पर वाहनों में रीयर-व्यू मिरर के रूप में किया जाता है। इनमें आपको हमेशा आभासी व सीधा प्रतिबिम्ब मिलेगा, चाहे वस्तु को दर्पण से कितनी भी दूरी पर रखें। और प्रतिबिम्ब सदैव वस्तु से छोटा होता है। किरण-पथ चित्र से यह समझा जा सकता है कि क्यों प्रतिबिम्ब दर्पण के अन्दर बनता है (यानी आभासी प्रतिबिम्ब होता है) और क्यों वह वस्तु से छोटा होता है (समतल दर्पण के समान बराबर साइज़ का नहीं होता)।

इसी प्रकार से उभयोत्तल लेंस (जिसे मात्र उत्तल लेंस भी कहते हैं) द्वारा भी अपवर्तन के बाद वास्तविक प्रतिबिम्ब बनता है। दूसरी ओर उभय-अवतल लेंस (जिसे अवतल लेंस भी कहते हैं) से सिर्फ आभासी प्रतिबिम्ब बनते हैं। इन सब बातों को किरण-पथ चित्र बनाकर देखा जा सकता है और फिर सत्यापन किया जा सकता है (बॉक्स 3)।

फोकस दूरी कैसे निकालें?

अवतल दर्पण और उभयोत्तल लेंस, दोनों के लिए, उनकी गोलाई के

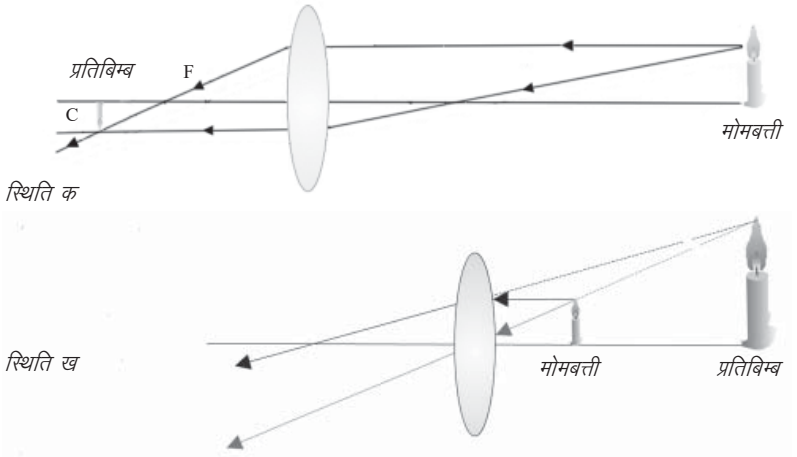

चित्र-6: *यहाँ उत्तल लेंस द्वारा विविध स्थितियों में बनने वाले प्रतिबिम्ब को समझने की कोशिश की गई है। स्थिति 'क' में मोमबत्ती को लेंस के वक्रता केन्द्र से बाहर रखा गया है। किरणों के रेखाचित्र से दिखता है कि प्रतिबिम्ब किरणों के कटान बिन्दु पर छोटा व उल्टा प्राप्त होता है। स्थिति 'ख' में मोमबत्ती को लेंस व फोकस बिन्दु के बीच कहीं रखा है। किरणों की मदद से समझ आता है कि यहाँ दोनों आपतित किरणें एक-दूसरे से दूर जा रही हैं। यदि इन किरणों को पीछे की ओर बढ़ाया जाए तो किरणों के कटान बिन्दु पर प्रतिबिम्ब सीधा व बड़ा प्राप्त होगा। क्या आप बता सकेंगे कि इन दो स्थितियों में कहाँ आभासी प्रतिबिम्ब बन रहा है?*

अनुसार एक दूरी होती है जहाँ बहुत दूरी से आने वाली प्रकाश किरणें फोकस हो जाती हैं। इस दूरी को दर्पण या लेंस की फोकस दूरी कहते हैं। बचपन में हम सबने लेंस के साथ खिलवाड़ किए हैं और कागज़ के टुकड़ों को आग लगाने की कोशिश भी की है। ऐसा करते हुए हम सूरज की किरणों को एक बहुत छोटे-से क्षेत्र में संकेन्द्रित कर देते हैं और जब सूर्य का प्रकाश और गर्मी एक छोटी-सी जगह में घनीभूत हो जाती है तो

बॉक्स-3: लेंस – किरण रेखाचित्र के शॉर्टकट

लेंस के किरण रेखाचित्र बनाने के नियम

1. लेंस के अक्ष के समान्तर आने वाली किरण अपवर्तन के बाद मुड़कर लेंस के फोकस बिन्दु से गुज़रेगी।
2. लेंस के फोकस बिन्दु से आने वाली किरण अपवर्तन के बाद अक्ष के समान्तर हो जाएगी।
3. वस्तु से निकलकर लेंस के केन्द्र से गुज़रने वाली किरण बगैर मुड़े लेंस के आर-पार निकल जाएगी।

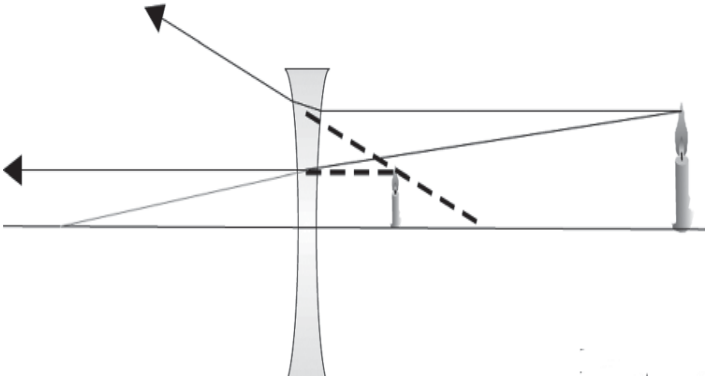

चित्र-7: उभय-अवतल लेंस (जिसे अवतल लेंस भी कहते हैं), इसमें प्रतिबिम्ब बनने की एक स्थिति को दर्शाया गया है। मोमबत्ती को लेंस के वक्रता केन्द्र से बाहर रखा गया है। अभी हमने उत्तल लेंस के साथ भी इस स्थिति को देखा है। वही तर्क लगाकर क्या आप बता सकेंगे कि यहाँ किस तरह का प्रतिबिम्ब बन रहा है?

कागज़ अपने ज्वलन बिन्दु तक गर्म होकर आग पकड़ लेता है। यह क्रिया तब और भी जल्दी होती है यदि हम कागज़ पर एक पेंसिल रगड़कर उसे काला कर दें ताकि वह गर्मी को बेहतर सोख सके (चाहें तो कार्बन पेपर का इस्तेमाल भी कर सकते हैं)। यह दूरी जिस पर दूरस्थ वस्तुओं से आने वाला प्रकाश एक बिन्दु पर संकेन्द्रित हो जाता है, वह गोलाकार सतह की वक्रता त्रिज्या की आधी होती है। और अवतल दर्पण तथा उभयोत्तल लेंस, दोनों की फोकस दूरी इस आधार पर आसानी-से पता की जा सकती है कि किसी चमचमाते दिन बाहर के दृश्य का स्पष्ट प्रतिबिम्ब कमरे के अन्दर दर्पण या लेंस से कितनी दूरी पर बनता है (यदि कमरे में अँधेरा होगा तो यह देखना आसान हो जाएगा कि प्रतिबिम्ब कब सबसे स्पष्ट है)।

शिक्षक ने सुझाया नया तरीका

लेकिन उत्तल दर्पण और उभय-अवतल लेंस के मामले में इस विधि से फोकस दूरी पता नहीं की जा सकती क्योंकि इनमें वास्तविक प्रतिबिम्ब नहीं बनता। और तो और इनका फोकल बिन्दु भी वास्तविक नहीं, बल्कि आभासी ही होता है। और इसी सन्दर्भ में मैंने कुछ नया सीखा। मैं जानती थी कि उत्तल दर्पण और उभय-अवतल लेंस में वास्तविक प्रतिबिम्ब नहीं बनता है। लिहाज़ा, मैंने कभी कोशिश भी नहीं की थी कि उस स्थान पर एक पर्दा रखूँ जहाँ प्रतिबिम्ब दिखता है और जाँच करूँ कि क्या वाकई वहाँ कोई वास्तविक

प्रतिबिम्ब बना है।

लेकिन हाल ही में महाराष्ट्र के आश्रमशाला शिक्षकों के साथ एक-दिवसीय कार्यशाला में मेरे एक साथी ने आकर बताया कि एक शिक्षक का कहना है कि उभय-अवतल लेंस की फोकस दूरी भी उसी तरीके से ज्ञात की जा सकती है - फर्क सिर्फ इतना होता है कि प्रतिबिम्ब उसी तरफ बनता है जिस तरफ वस्तु रखी गई है। यह बात रेखाचित्र में दिखाई गई है। तो यदि आप पर्दा उसी तरफ रखें जिधर वस्तु है (इस मामले में वस्तु बाहर का नज़ारा था) तो आपको पर्दे पर प्रतिबिम्ब प्राप्त होगा, और प्रतिबिम्ब व लेंस के बीच की दूरी उभय-अवतल लेंस की फोकस दूरी होगी।

मैंने मानने से इन्कार कर दिया कि ऐसा कोई प्रतिबिम्ब बना होगा। मैंने कहा कि सिद्धान्त के अनुसार भी ऐसा होना असम्भव है। लेकिन मुझे यकीन दिलाया गया कि पर्दे पर प्रतिबिम्ब वास्तव में बना था जबकि पर्दे को उसी बाजू रखा गया था जिस तरफ वस्तु थी। खैर, मेरे लिए इस बात की जाँच करना ज़रूरी था। तो मैं एक उभय-अवतल लेंस और एक पर्दा (सफेद कागज़ का एक ताव) लेकर दरवाज़े पर पहुँची और कागज़ को लेंस के उसी तरफ रखा जिस तरफ सूरज था। मैं स्पष्ट कहूँगी कि मुझे कुछ भी दिखने की उम्मीद नहीं थी। और इसलिए जब पर्दे पर वास्तव में एक धुँधला-सा प्रतिबिम्ब - सूरज और पेड़ व उसकी शाखाओं की एक धुँधली-सी आकृति, जिसमें से रोशनी छनकर आ रही थी - नज़र आया तो चौंकने की बारी मेरी थी।

इससे पहले कि मैं इस चमत्कार को पचा पाती (नियमों से हटकर कुछ हो रहा था, तो चमत्कार ही कहा जाएगा), मेरी नज़र लेंस पर पड़ी (शायद मैं तसल्ली कर लेना

बॉक्स-4: काँच - कुछ अपवर्तन और कुछ परावर्तन

सामान्यत: हम मानते हैं कि काँच पारदर्शी होता है। अर्थात इसकी सतह पर पड़ने वाला सारा प्रकाश इसमें से होकर आर-पार निकल जाता है (अपवर्तन अवश्य होता है)। लेकिन तथ्य यह है कि काँच की सतह से भी प्रकाश का कुछ हिस्सा परावर्तित हो जाता है। यह बात तब स्पष्ट सामने आती है जब हम काँच में से बाहर देखने की कोशिश करें और बाहर अँधेरा हो। तब हमें बाहर का दृश्य दिखने की बजाय कमरे का और खुद का प्रतिबिम्ब नज़र आता है, जो परावर्तन के कारण बना है। दिन के समय बाहर से इतना अधिक प्रकाश अन्दर आता है कि परावर्तित होकर लौटने वाला यह प्रकाश उसकी तुलना में नगण्य होता है। लेकिन वस्तुत: पानी या काँच जैसे किसी भी 'पारदर्शी' पदार्थ की सतह से थोड़ा-बहुत परावर्तन तो होता ही है।

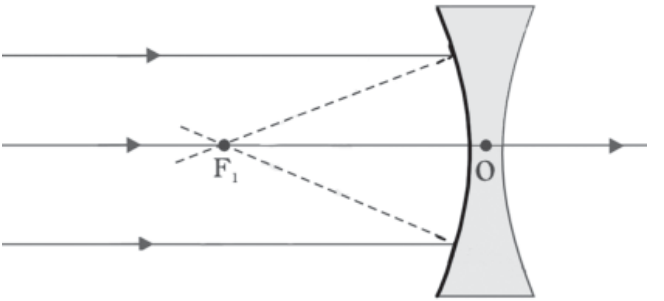

चित्र-8: *अवतल लेंस की फोकस दूरी नए तरीके से। आम तौर पर काफी कम लोग इस बात पर विचार करते हैं कि काँच की बाहरी सतह प्रकाश के कुछ हिस्से को परावर्तित भी करती है। यहाँ सिर्फ समझ के लिए अवतल लेंस का चित्र दिया गया है जिसकी एक वक्र आउटलाइन मोटी काली लाइन है। हम ऐसा मान लेंगे कि ये मोटी काली वक्र लाइन वाली सतह प्रकाश का परावर्तन कर रही है। तो यह एक किस्म से अवतल दर्पण जैसा व्यवहार कर रहा होगा। मान लीजिए अनन्त पर रखी वस्तु से चलने वाली दो किरणें मुख्य अक्ष के समान्तर आती हुई लेंस की मोटी वक्र रेखा से टकराकर परावर्तित होकर फोकस से गुज़रती हैं। यदि इस बिन्दु के पास सफेद कागज़ रखा जाए तो वस्तु का धुँधला प्रतिबिम्ब दिखाई देगा। लेंस से इस बिन्दु की दूरी को मालूम कर लें तो ये दूरी लेंस की फोकस दूरी के बराबर होगी।*

चाहती थी कि लेंस वास्तव में उभय-अवतल है) और मैंने देखा कि मेरा प्रतिबिम्ब मुझे घूर रहा है। और फिर दुनिया एक बार फिर पैरों पर सीधी खड़ी हो गई। मुझे समझ में आया कि वह वास्तविक प्रतिबिम्ब उभय-अवतल लेंस से नहीं बना था बल्कि प्रकाश के उस अंश से बना था जो लेंस के काँच की सतह से परावर्तित हुआ था (आपको याद ही होगा कि प्रतिबिम्ब फीका था)। इसका अर्थ था कि काँच की वह सतह एक अवतल दर्पण की तरह व्यवहार कर रही थी।

फिर मुझे यह भी कौंधा कि शिक्षक का यह कहना सही था कि इस तरीके से लेंस की फोकस दूरी निकालना सम्भव है। हम चाहे लेंस को देखें या दर्पण को, वक्रता तो वही रहती है (लेंस की सतह थोड़े-से प्रकाश को परावर्तित कर देती है)। तो यह था अवतल लेंस की फोकस दूरी ज्ञात करने का निहायत दिलचस्प तरीका। और मुझे यह तरीका कभी पता न चला क्योंकि मैंने इस सिद्धान्त पर कभी सवाल नहीं किया कि अवतल लेंस से वास्तविक प्रतिबिम्ब नहीं बन सकता।

उमा सुधीर: *एकलव्य* के साथ जुड़ी हैं। विज्ञान शिक्षण के क्षेत्र में काम कर रही हैं।
अँग्रेज़ी से अनुवाद: सुशील जोशी: *एकलव्य* द्वारा संचालित स्रोत फीचर सेवा से जुड़े हैं। विज्ञान शिक्षण व लेखन में गहरी रुचि।

इतिहास: किस काम का है यह?

शेषागिरी केएम राव

"मुझे यकीन है कि किसी विषय को उसके इतिहास से जुदा करने पर उतना नुकसान नहीं होगा, जितना गणित में।"

- ग्लैशियर

नौवीं के छात्रों की एक कक्षा की कल्पना कीजिए जो 'लॉगरिद्म' (लघुगणक) सीखने वाले हैं। एक ऐसे शिक्षक की कल्पना कीजिए जो कक्षा में घुसते ही घोषणा कर देता है: "आज हम लॉगरिद्म के बारे में सीखेंगे।" सामने उपस्थित भावशून्य चेहरों को देखकर थोड़ा अनिश्चित ढंग से वह ब्लैकबोर्ड की ओर मुड़ता है और लिखने लगता है, शायद उतने ही ढुलमुल यकीन से:

यदि $a^x = y$ हो, तो x को आधार a पर y का लॉगरिद्म कहते हैं जिसे निम्नानुसार लिखा जाता है $x = \log_a y$. तो यदि $2^3 = 8$ है, तो 3 को 2 के आधार पर 8 का लॉगरिद्म कहा जाता है, जिसे इस तरह लिखा जाता है $\log_2 8 = 3$.

इसके बाद शिक्षक मुड़कर आपसे मुखातिब होता है। यदि आप इस शिक्षक की कक्षा में छात्र होते तो कैसा लगता? यदि 'लॉगरिद्म' नाम के इस जीव के बारे में आप कुछ नहीं जानते तो फिलहाल इस बात की चिन्ता न करें। उस पर बाद में आएँगे। दरअसल, लॉगरिद्म एक विलक्षण विचार है, बशर्ते कि उसे ठीक से समझाया जाए। अन्यथा यह एक दु:स्वप्न साबित हो सकता है।

मैं देख सकता हूँ कि लाचारी उभरने लगी है। सही कहें तो सारे शिक्षक लॉगरिद्म की कक्षा इस तरह से शुरू नहीं करेंगे। ज़्यादा सम्भावना इस बात की है कि वे छात्रों से कुछ सवाल आमंत्रित करेंगे। यदि कोई छात्र पूछता है कि लॉगरिद्म होता क्या है और इनकी ज़रूरत क्या है, तो शिक्षक शायद कहें कि इनकी ज़रूरत जटिल गणितीय गणनाओं को सरल बनाने में पड़ती है। यदि शिक्षक ने जॉन नेपियर के बारे में पढ़ा-सुना है तो वे बता सकती हैं कि लॉगरिद्म की खोज किसने की थी। हो सकता है कि वे कुछ 'बुनियादी' (मगर विचित्र) सूत्र प्रस्तुत कर दे, जैसे

$(\log_x ab = \log_x a + \log_x b)$

और $(\log_x a/b = \log_x a - \log_x b)$

उम्मीद करता हूँ कि आप अभी तक मौजूद हैं। एक बार फिर, यह चिन्ता मत कीजिए, कम-से-कम अभी तो न कीजिए, कि इन सूत्रों का मतलब क्या है।

जल्दी ही आप देखेंगे कि ये छात्र अध्याय के अन्त में दिए गए सवालों की ओर बढ़ रहे हैं। हम शर्त लगा सकते हैं कि वे भी यही पूछ रहे होंगे, "ये सब है क्या? हमें यह सब क्यों चाहिए? यह रायता किसने फैलाया है?"

इनमें से हरेक सवाल की एक रोचक कहानी है, जो कक्षा में जान फूँक सकती है। शिक्षकों को प्रोत्साहित किया जाना चाहिए कि वे ऐसी कहानियाँ हासिल करें जो जिज्ञासा को पनपाएँ और सीखने को मज़ेदार बनाएँ। यदि इस तरह का उत्साह पैदा न किया जाए, तो गणित की कक्षाएँ नीरस साबित हो सकती हैं। तब हम सिखाए जा रहे गणित में सन्दर्भ और अर्थ जोड़ने का महत्वपूर्ण अवसर गँवा देते हैं।

लीलावती की रचना

मैं लॉगरिद्म की कहानी थोड़ी देर में सुनाऊँगा। मैं यकीन दिलाता हूँ कि वह कहानी इलहाम (रहस्योद्घाटन) से कम नहीं होगी। फिलहाल में वे कहानियाँ साझा करूँगा जो हमने चन्ना से सुनी थीं। हमें यह देखना होगा कि हमारे लिए उनका अर्थ क्या है। पर वह काम कहानी सुनने के बाद करते हैं।

चन्ना के साथ अपने दूसरे वर्ष में, जब हम द्विघात समीकरणें सुलझाना सीख रहे थे, उन्होंने भारतीय गणितज्ञ भास्कराचार्य द्वितीय और उनकी पुत्री लीलावती की कहानी सुनाई थी। चन्ना ने यह कहानी भास्कर के ग्रन्थ लीलावती के अनुवाद में से उठाई थी। यह पुस्तक उन्हें उनके मित्र वेंकटरमन ने कर्नाटक के शिमोगा ज़िले के एक सुन्दर गाँव मत्तूर की गलियों में बचपन में दी थी।

भास्कराचार्य द्वितीय (1114-85 सी.ई.) को अक्सर मध्यकालीन भारत के महान गणितज्ञ के रूप में उल्लिखित किया जाता है। यह रेखाचित्र केवल चित्रण है क्योंकि हम नहीं जानते कि वे कैसे दिखते थे।

हमने चन्ना से बेचारी लीलावती के बारे सुना जिसके बारे में ज्योतिषियों ने भविष्यवाणी की थी कि उसका विवाह कभी नहीं होगा। लेकिन भास्कर, जो स्वयं एक ज्योतिषी थे, गणना करके वह तारीख और समय निर्धारित नहीं कर पा रहे थे जब वह विवाह कर सकेगी। यदि वह समय टल गया तो लीलावती की शादी का मामला ही खत्म हो जाएगा। तब गणितज्ञ भास्कर ने एक घड़ी बनाई जिसमें लोटे में पानी भरते-भरते वह ठीक उस समय डूब जाएगा जब लीलावती विवाह कर सकती है। लेकिन उत्साह और बेसब्री के चलते लीलावती उस घड़ी पर झुक गई और उसे ध्यान ही न रहा कि उसकी माला का एक मोती गिर गया था और उस मोती ने वह छेद बन्द कर दिया जिसमें से पानी धीरे-धीरे जल-घड़ी में भर रहा था।

नतीजा यह हुआ कि मुहूर्त का सही-सही निर्धारण न हो पाया क्योंकि जल-घड़ी की व्यवस्था तो अस्त-व्यस्त हो गई थी। लीलावती नाखुश और लाचार रह गई। अन्ततः उसका विवाह हुआ ज़रूर किन्तु उसके पति की मृत्यु जल्दी ही हो गई। उसके पति की असमय मृत्यु का दोष विवाह के अशुभ समय पर मढ़ा गया। अपनी उदास पुत्री को तसल्ली देने के लिए भास्कर ने *लीलावती* (गणितीय ग्रन्थ) की रचना की। यह 1150 ईस्वी के आसपास की बात है। उनका विश्वास

चित्र-1: *एक कलाकार द्वारा बनाया गया जल-घड़ी का चित्र*

था कि इस तरह लीलावती का नाम अमर हो जाएगा। वह उद्देश्य तो निसन्देह पूरा हुआ।

गणित में काव्य

इस कहानी ने मेरा मन भी बहलाया और उलझाया भी। गणित में इतना कुछ हो रहा था, बेजान द्विघात समीकरण से बहुत अधिक। मैं दक्षिण भारत में कहीं, 1150 ईस्वी में इस महान गणितज्ञ और उसकी पुत्री के बारे में कल्पना करने लगा। वह ज़माना कैसा रहा होगा? उस समय तक तो मैं यह भी नहीं जानता था कि भारत में ऐसे गणितज्ञ थे जो ऐसे सवालों पर काम करते थे। हम सोचते थे कि इतिहास में सारे गणितज्ञ यूरोप या उसके आसपास ही होते थे।

हममें से कई लोग आज भी यही सोचते हैं, और भूल जाते हैं कि भारत में कई हज़ार वर्षों पहले गणितीय सोच की एक समृद्ध परम्परा थी। मेरे लिए तो यही एक बड़ा सबक था, यह बोध जो सिर्फ चन्ना की गणित की कक्षा में मिला था। इतिहास के पीरियड में तो हम यह मानकर आगे बढ़ जाते कि यह एक और जानकारी है जिसे रट लेना है।

मैं धीरे-धीरे इस दिवास्वप्न में से निकला, तो देखा कि चन्ना साफ-सुथरे अक्षरों में बोर्ड पर निम्नलिखित सवाल लिख रहे हैं:

"चक्र और कौंच पक्षियों से घिरी एक झील में कमल के फूल के डण्ठल की लम्बाई का एक इकाई भाग पानी की सतह के ऊपर दिख रहा है। हल्की हवा से डोलते हुए उसकी नोक उसकी मूल स्थिति से तीन इकाई दूर पानी में डूब जाती है। फटाफट पानी की गहराई बताओ।"

यह बहुत ढीला-ढाला अनुवाद है। मूल संस्कृत में यह इस तरह है:

चक्र क्रौंचाकुलित सलिले
क्वापि दृष्टं तडागे
तोयादूर्ध्वं कमल-कलिकाग्रं
वितस्तिप्रमाणं।
मन्दं मन्दं चलितमनिलेनाहतं
हस्तयुग्मे
तस्मिन्मग्नं गणक कथय
क्षिप्रमम्भःप्रमाणं।।

लीलावती का यह सवाल चन्ना के पसन्दीदा सवालों में से था। वे हर साल छात्रों को यह सवाल दिया करते थे। ज़बानतोड़ू है, नहीं? हममें से जो लोग संस्कृत नहीं जानते, उन्हें तो यह ऊटपटांग ही लगता है। लेकिन उस ज़माने के भारतीय गणितज्ञ इसी भाषा का उपयोग करते थे। भास्कर जैसे गणितज्ञ उच्च कोटि के कवि भी थे जो अपने गणित की रचना काव्य में किया करते थे। सौन्दर्यबोध उनके काम का अभिन्न अंग था। लीलावती का सवाल भी सुन्दरता से रचा गया है और चन्ना ने इसे यथासम्भव कुशलतापूर्वक बोर्ड पर चित्रित किया ताकि हम इसका विश्लेषण कर सकें।

मान लीजिए हम कहते हैं कि कमल के डण्ठल के जलमग्न हिस्से की लम्बाई 'x' है, तो कुल लम्बाई 'x+1' इकाई होगी। जो लम्बाई जलमग्न है वह उस जगह पर झील की गहराई की द्योतक है जहाँ कमल खड़ा है। यदि हम मानें कि कमल एकदम सीधा खड़ा है, तो इसका मतलब होगा कि कमल का डण्ठल पानी की सतह के साथ समकोण बनाता है। हम यह भी मान रहे हैं कि कमल झील के पेन्दे में से निकला है। (कमल के पौधे वास्तव में तैरते हैं, लेकिन भास्कर को इस बात के लिए क्षमा किया जा सकता है, यह कोई बहुत बड़ी गलती नहीं है।)

इस सवाल में (x+1) डण्ठल की वह लम्बाई है जो हवा से डोलते हुए

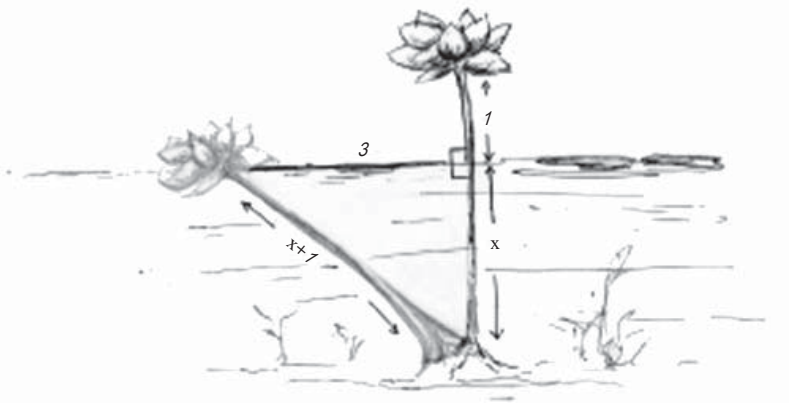

चित्र-2

अपने मूल स्थान से तीन इकाई दूर जाकर पानी में टिक जाती है। जैसा कि हमारे चित्र से स्पष्ट है, हमारे पास एक त्रिभुज है जिसकी भुजाएँ 3 इकाई, x इकाई और (x+1) इकाई हैं। (x+1) विकर्ण का द्योतक है (वह पूरा डण्ठल जो अब जलमग्न है), जबकि 3 व x अन्य दो भुजाएँ हैं। पायथागोरस प्रमेय को लागू करने पर हमें निम्नलिखित मिलता है:

(विकर्ण)^2 = अन्य दो भुजाओं के वर्गों का योग

$(x+1)^2 = x^2 + 3^2$

बाईं बाजू को विस्तारित करके समीकरण को हल करने पर हमें मिलता है:

$x^2 + 2x + 1 = x^2 + 3^2$

$2x + 1 = 9$

$2x = 8$

लिहाज़ा, x = 4 इकाई, जो उस जगह पर झील की गहराई है जहाँ कमल पेन्दे में खड़ा है। "देखो!" भास्कर ने ठीक उसी तरह कहा होगा जैसे चन्ना की युक्लिडियन आदत है 'QED' कहने की।

इस समीकरण के बारे में एक बात और कहना मुनासिब होगा। यह शुरू तो एक द्विघात समीकरण के रूप में होती है (क्योंकि इसमें x की सबसे बड़ी घात 2 है यानी x^2 में) लेकिन इसका हल एक सरल समीकरण के रूप में होता है क्योंकि दोनों तरफ x^2 कट जाते हैं। लीलावती के कई सवालों की प्रकृति द्विधाती है। इस सवाल के समान उनमें x^2 कटते नहीं हैं बल्कि उन्हें एक विधि से हल करना पड़ता है जिसे गुणनखण्डन (factorisation) कहते हैं। छात्र इसे हाई स्कूल में सीखते हैं। आपकी भूख

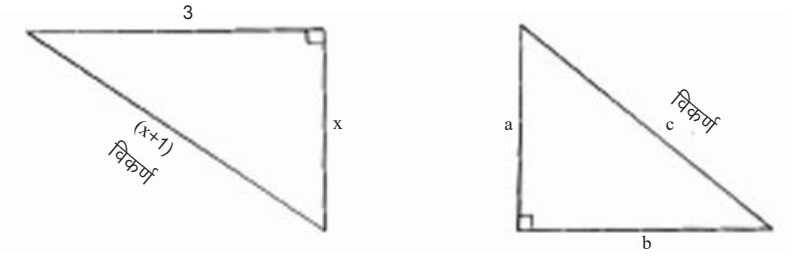

इसलिए, $(x + 1)^2 = x^2 + 3^2$ $a^2 + b^2 = c^2$

चित्र-3

जगाने के मकसद से मैंने पुस्तक के अन्त में कल्पनाशील ढंग से बनाया गया एक सवाल जोड़ा है।

यदि आप जाना-पहचाना पायथागोरस प्रमेय भूल गए हों, तो मैं एक समकोण त्रिभुज के चित्र (चित्र-3) की मदद से आपकी याद ताज़ा कर देता हूँ। *लीलावती* के सवाल की तुलना हम किसी भी समकोण त्रिभुज से कर सकते हैं।

अब द्विघाती समीकरण कोई रूखा सूत्र या प्रक्रिया नहीं रह गई थी। हमें यह सवाल हल करने में मज़ा आया था और कक्षा जीवन्त हो उठी थी। मेरे लिए इसका लुभावना हिस्सा अतीत में चहलकदमी का था। मुझे लग रहा था जैसे मैं तकरीबन 900 साल बाद भास्कराचार्य से वार्तालाप कर रहा हूँ। यह भी एक बड़ा बोध हुआ था कि भारत में महान गणितज्ञ हुए हैं - हज़ारों वर्ष पहले - जिन्होंने उन चीज़ों पर काम किया था जिन्हें हम 1984 में स्कूल में पढ़ रहे थे।

आखिर में, एक अन्यथा उबाऊ कवायद रोमांचक साबित हुई क्योंकि हमने द्विघाती समीकरण की ऐतिहासिक कड़ियों के साथ-साथ उनके व्यावहारिक महत्व को भी देखा। वास्तव में, चमत्कार तो कहानी ने किया था, ठीक उसी तरह जैसे युक्लिड और प्रमाणों को लेकर उनके दृष्टिकोण की कहानी ने किया था, हालाँकि युक्लिड का मामला तो इतिहास में और भी पीछे जाता है, और भी ज़्यादा पेचीदा है। हमारा सम्पर्क गणित के रोमांचक विषयों से होने लगा था। मैं सोचने लगा, "गणित का इतिहास कितना पुराना है?"

इससे पहले कि हम गणित शिक्षण में ऐतिहासिक पद्धति के उपयोग की और चर्चा करें, जुगाली के लिए भास्कराचार्य का एक और सवाल हाज़िर है। इसमें एक द्विघाती समीकरण प्राप्त होती है जिसको हल

करने के लिए गुणनखण्ड का सहारा लेना पड़ता है:

"मधुमक्खियों के एक झुण्ड में से, मधुमक्खियों की कुल संख्या के आधे के वर्गमूल के बराबर संख्या में मधुमक्खियाँ उड़कर कमल के फूल पर पहुँचीं। जल्दी ही, झुण्ड का 8/9 भाग उड़कर उसी कमल के फूल पर पहुँचा। कमल की सुगन्ध से मोहित होकर एक नर मधुमक्खी एक फूल में घुस गई। लेकिन जब वह अन्दर थी, तभी रात हो गई और फूल बन्द हो गया। मधुमक्खी अन्दर कैद हो गई। उसकी भिनभिनाहट सुनकर उसकी साथी बाहर से चीखी, 'ओ मेरे प्यारे'। झुण्ड में कितनी मधुमक्खियाँ थीं?"

जितना इसके बारे में सोचता हूँ, मुझे लगता है कि चन्ना एक श्रेष्ठ इतिहास शिक्षक और किस्सागो थे। हमारे नियमित इतिहास शिक्षक से तो वे निश्चित रूप से बेहतर थे जो कक्षा में बढ़ते कोलाहल के बीच सिर झुकाकर पाठ्यपुस्तक में से वाचन करके इतिहास का गला घोंटा करते थे। कभी-कभी तो हम सो जाते थे। यह समय की बरबादी के अलावा कुछ नहीं था। अलबत्ता, कभी-कभी मज़ा भी आता था, हालाँकि उनका ऐसा कोई इरादा नहीं होता था। शिक्षक की बेखबरी में हम कागज़ के हवाई जहाज़ और रॉकेट, चॉक के टुकड़े वगैरह फेंकते रहते थे जबकि वे विषयवस्तु के उबाऊ वाचन में व्यस्त रहते। मुझे याद नहीं पड़ता कि कभी उन्होंने सिर उठाकर देखा हो और हमें डाँटा हो।

छात्रों की गणित में अरुचि

चन्ना वास्तव में इतिहास का उपयोग कैसे करते थे? इसका जवाब देने से पहले हमें एक अन्य बुनियादी सवाल पूछना होगा: छात्रों को गणित मुश्किल और अरुचिकर क्यों लगता है? इस सवाल के कई जवाब हो सकते हैं, जैसे खराब शिक्षण, शिक्षक की अपर्याप्त तैयारी वगैरह।

चन्ना द्वारा पढ़ाए जाने के अपने अनुभव के आधार पर मेरा जवाब है कि हमारे पास ऐसे शिक्षक नहीं हैं जो गणित के रहस्यों की पर्याप्त पड़ताल करते हों। यदि ऐसा होता है, तो वे ऐसे सवाल पूछने लगते हैं: क्यों? कौन? कहाँ? कैसे? वे विषय के इतिहास में चले जाते हैं। वे कहानियाँ और पैटर्न्स ढूँढ़ने लगते हैं। वे एक बार फिर से विषय के छात्र बन जाते हैं।

लेकिन शिक्षकों को गणित की छानबीन करने को प्रशिक्षत करना एक चुनौतीपूर्ण काम है। चुनौती की शुरुआत तो स्वयं प्रशिक्षकों से होती है। क्या वे जिज्ञासु हैं? क्या वे पढ़ते हैं, मनन करते हैं और सवाल पूछते हैं? वे जो कुछ कर रहे हैं, क्या उसमें उनकी रुचि है, क्या वे अपने विषय को गहराई में टटोलने में रुचि रखते हैं? यही वजह है कि हम अपरिहार्य रूप से उस चीज़ में फँस जाते हैं,

जिसे शिक्षाविद शिक्षा की 'तंत्रगत' समस्या कहते हैं।

जैसा कि कई सारे सोचने-विचारने वाले पालकों और शिक्षकों ने पहचाना है, शिक्षा की शान्त चुनौती यह है कि अर्थ और समझ के लिए पढ़ाया जाए, इस तरह पढ़ाया जाए कि बच्चे यह समझ सकें कि 'क्यों' पढ़ाया जा रहा है। यह चुनौती तब और भी गम्भीर हो जाती है जब गणित पढ़ाने की बात आती है। क्या हम सूत्र और विधियाँ मासूम छात्रों में ठूँसने की बजाय 'क्यों' समझाना सीख सकते हैं? सूत्र और विधियाँ ठूँसते जाना ही वह समस्या है जिसकी वजह से उन्हें गणित का कोई अर्थ समझ नहीं आता और वे उससे दूर हट जाते हैं।

बच्चे तो सदा सवाल पूछते रहते हैं। उनकी जिज्ञासा अन्तहीन होती है। बचपन में हम सब ऐसे ही थे। तो बड़े होकर हमें क्या हुआ? शायद हमें अपने अन्दर के बच्चे को फिर से खोजना होगा। ऐसा करके शायद हम बच्चों के सवालों के जवाब बेहतर ढंग से दे पाएँगे।

जो जिज्ञासा हम वयस्कों के रूप में महसूस नहीं करते, बच्चों में उसे सन्तुष्ट कैसे करें? शायद हमें उन्हें कहानियाँ सुनानी चाहिए। कहानियाँ - जो गणित हम स्कूल में सीखते हैं उसे रचने वाले लोगों की कहानियाँ, हज़ारों साल पहले गणित के विकास की कहानियाँ - कभी रोमांचित करने से नहीं चूकतीं। ये कहानियाँ गणित शिक्षण का अभिन्न अंग बन जानी चाहिए। तभी बच्चे गणित की सच्ची प्रकृति को खोज पाएँगे और इस विषय के प्रति आकर्षण विकसित कर पाएँगे। जब वे गणित को खोजने और रचने का अनुभव कर पाएँगे, तभी वे यह समझ पाएँगे कि यह विषय मात्र सूत्रों और प्रमेयों की कलाबाज़ी से बढ़कर कुछ है।

चन्ना की कार्यशैली में गणित कोई ऐसी चीज़ नहीं थी जो पकी-पकाई आसमान से टपकी हो, जिसका जादुई उपयोग करके आप परीक्षाओं में बढ़िया अंक प्राप्त करें। उनकी नज़र में यह विषय मानवीय पहलू से जुदा और 'क्यों' की व्याख्या से रहित अलग-थलग विषय नहीं था।

इतिहास और कहानियों के ज़रिए

शिक्षक के तौर पर अपनी यात्रा में, चन्ना ऐतिहासिक तत्व को शामिल करते थे ताकि हमारी जिज्ञासा को हवा दे सकें और विषय को ज़्यादा मानवीय बना सकें। जब हमने उनके साथ हाई स्कूल की यात्रा की, गणितीय रुझान के साथ या उसके बगैर, तो उन्होंने हमें कई लुभावनी कहानियों की दावत दी। यह उनके शिक्षण की एक प्रमुख तकनीक थी। शायद यह एक सबसे कारगर तरीका है जो सीखने वालों की कल्पना को उड़ान दे सकता है।

गणितीय खोजों की हज़ारों वर्ष

पुरानी ऐसी कुछ कहानियों की जड़ें रोज़मर्रा की समस्याओं में थीं। ये कहानियाँ हमें बताती थीं कि गणितज्ञ जादूगर नहीं, बल्कि हमारे जैसे इन्सान होते हैं जिनकी रुचि जीवन में होती है। यह एक बात थी जिसे रटन्त विद्या और गणित-भीती ने हमसे छिपाए रखा था, जब तक कि चन्ना, विषय में अपनी नैसर्गिक रुचि के चलते, हमें खोज-यात्रा पर नहीं ले गए। विषय का इतिहास उनकी उंगलियों पर था और वे जानते थे कि गणित की दुनिया में क्या चल रहा है। जब मात्र परीक्षाएँ उत्तीर्ण करने की बजाय हम अर्थ और समझ की चाह करने लगे, तो हम ज़्यादा-से-ज़्यादा क्यों भी पूछने लगे।

चन्ना का 'अन्तरविषयी' तरीका अरस्तू द्वारा 2000 वर्ष पूर्व कही गई बात को बखूबी प्रतिध्वनित करता था: "यदि आप कुछ समझना चाहते हो, तो उसकी शुरुआत और उसके विकास को देखो।"

स्कूलों में बच्चे गणित कैसे सीखते हैं, इसे लेकर हुए अनुसन्धान दर्शाते हैं कि क्यों इसके शिक्षण में इतिहास महत्व रखता है। यह हमें कई अलग-अलग तरीकों से 'क्यों' का जवाब देने में मदद कर सकता है। सबसे पहले, बच्चों के मन में ऐतिहासिक तथ्यों को लेकर कई 'क्यों' प्रश्न होते हैं। यदि आपको अपने स्कूल दिन याद हैं तो हम सभी के मन में ऐसे सवाल होते थे। इनमें इस तरह के सवाल शामिल होते हैं: "समकोण 90 डिग्री का ही क्यों होता है? एक मिनट में 60 सेकण्ड और 1 घण्टे में 60 मिनट क्यों होते हैं?" कोई जानकार शिक्षक इस बात पर प्रकाश डाल सकता है कि गणित में ये परिभाषाएँ कैसे विकसित हुईं और ये ज़रूरी क्यों हैं, हालाँकि अधिकांश मामलों में ये मनमानी ही होती हैं।

दूसरा, और शायद सबसे महत्वपूर्ण, बच्चे विषय के हिस्सों और अवधारणाओं के बारे में 'क्यों' पूछते हैं। मसलन, हमें बीजगणित की ज़रूरत क्यों है? केल्कुलस की क्या ज़रूरत है? ये किस काम आते हैं? इनका विकास कैसे हुआ? इस विषय में नए विचारों के विकास के पीछे प्रमुख व्यक्तियों के साथ-साथ सदैव एक पृष्ठभूमि होती है। इस पृष्ठभूमि को समझने से हमें विभिन्न विषयों के बीच गणितीय कड़ियाँ जोड़ने में मदद मिलती है। इससे यह भी पता चलता है कि विभिन्न विचारों के विकास को कहाँ से स्फूर्ति मिली थी। और सबसे बड़ी बात यह है कि इससे विषयवस्तु का मानवीयकरण होता है।

गणितीय विषयों या विचारों की उपयोगिता के सवाल को दो तरह से सम्बोधित किया जा सकता है। किसी 'खालिस' गणितज्ञ के लिए किसी नए विचार अथवा महत्वपूर्ण गणितीय खोज से स्वयं गणित के उद्देश्य की पूर्ति होती है, चाहे वह मानव कल्याण

अथवा वैज्ञानिक विकास में कोई योगदान दे या न दे। 'प्रायोगिक' गणितज्ञ को लिए प्रमुख सरोकार सदा यह रहता है कि गणित को समाज की बेहतरी के लिए कैसे इस्तेमाल किया जा सकता है। यह सरोकार काफी व्यापक है, इसमें विज्ञान, इंजीनियरिंग, सामाजिक विज्ञान, कला और वाणिज्य - दरअसल मानवीय क्रियाकलाप का हर पहलू शामिल होता है।

कोई भी नया टॉपिक उठाते समय, चन्ना शुरू की कुछ कक्षाओं में हमें उससे जुड़ी कहानियाँ सुनाते थे। वे समझाते थे कि कैसे और क्यों कोई विचार समय के साथ विकसित हुआ और यह भी बताते थे कि उसके विकास में प्रमुख व्यक्ति कौन थे। वे अपनी बात को इतना सरल रखते थे कि हम मूल विचार को पकड़ पाएँ। जैसे-जैसे कहानी आगे बढ़ती, धीमे-धीमे, किन्तु निश्चित रूप से, वे हमें यह समझा देते थे कि हम अब कक्षा में जो कुछ करने जा रहे हैं (या करने भी लगे हैं), उसका इस विचार से क्या सम्बन्ध है।

गणितीय कड़ियों और परिप्रेक्ष्यों की इस विहंगम दृष्टि से लैस होकर हम समस्या समाधान में जुट जाते, जो ज़्यादा ढर्रेनुमा होता था मगर उतना ही महत्वपूर्ण हिस्सा होता था। कहानियाँ हमारे साथ लम्बे समय तक बनी रहतीं। मुझे वे कहानियाँ इतने वर्षों बाद भी याद हैं क्योंकि वे मुझे सोचने और कल्पना करने को उकसाती रहती हैं।

गणित सीखने का उद्देश्य

हम देख पाते थे कि गणित कोई अलग-थलग बक-बक नहीं है। इसकी उत्पत्ति विभिन्न संस्कृतियों में, अलग-अलग समय पर इन्सानों के विभिन्न उद्देश्यों की पूर्ति के लिए हुई है और इसने मनुष्य के ज्ञान व अनुभव को विस्तार दिया है। उद्देश्य शुद्धत: बौद्धिक हो सकता है अथवा समाज में किसी विशिष्ट समस्या को सुलझाने का हो सकता है, या वैज्ञानिक विचारों के विकास में मदद का हो सकता है।

इस प्रकार से गणित मानव समाज के साथ अभिन्न रूप से जुड़ा है। इसका प्रादुर्भाव लोगों के सवालों के जवाब देने और विभिन्न किस्म की समस्याओं को सुलझाने के लिए हुआ था। जैसे-जैसे ज़्यादा सवाल और समस्याएँ उभरीं, वैसे-वैसे गणित का विकास होता गया। यह मानव जीवन के समक्ष उपस्थित चुनौतियों के समाधान हेतु नए-नए विचारों का आविष्कार करता जा रहा है। यदि बच्चे इस बात को देख सकें तो गणित सीखना उतना ही अधिक उद्देश्यपूर्ण हो सकता है और इसे सीखने के लिए एक अच्छी बुनियाद तैयार की जा सकती है।

मैं यह नहीं कह रहा हूँ कि इतिहास ही सब कुछ है। लेकिन यह एक महत्वपूर्ण हिस्सा है जो इस

विषय को सीखने-सिखाने की पहेली में से नदारद है। इतिहास दुधारी तलवार जैसा (dicey) है, जैसा कि हमने पिछले अध्याय में युक्लिड के प्रकरण में देखा था। यह तब और भी पेचीदा हो जाता है जब हम राजनैतिक भूगोल को शामिल कर लेते हैं। इसकी बात हम कुछ देर बाद करेंगे।

एक इन्सान के नाते और एक शिक्षक के नाते चन्ना निहायत आत्मविश्वासी और शान्त नज़र आते हैं। लगभग बुद्ध के समान वे निर्लिप्त हैं, मगर उष्णता बिखेरते हैं। हम उनके करीब नहीं आ सकते और न ही दोस्ताना हो सकते हैं। वे सुनिश्चित करते हैं कि हमारे और उनके बीच हमेशा एक दूरी बनी रहे। मेरा ख्याल है, यह ठीक ही है। लेकिन जब उनके साथ गणित सीखने की बारी आती है, तो मज़ा ही मज़ा होता है। थोड़े गंजे सिर, चश्मे और नफीस सूट में वे आदर्श गणितज्ञ लगते हैं!

हर दिन सुबह चन्ना अपने लम्ब्रेटा स्कूटर पर स्कूल आते हैं। उनके दिमाग में क्या चलता है और हर दिन वे हमारे लिए क्या खिचड़ी पकाते हैं?

जब मैं पीछे मुड़कर उन तीन वर्षों को देखता हूँ, जब उन्होंने हमें पढ़ाया था, तो मुझे समझ में आता है कि वे विषय के ज्ञान में कितने पारंगत थे। इतने सालों बाद मुझे समझ में आया है कि वे वास्तव में गणितीय विश्व और उसके शाश्वत रहस्यों और विरोधाभासों के अन्वेषी थे।

शेषागिरी केएम राव: यूनीसेफ, छत्तीसगढ़ में शिक्षा विशेषज्ञ हैं। प्रारम्भिक शिक्षा और बाल्यावस्था में विकास में विशेष रुचि। साथ ही, आधुनिक शैक्षिक मुद्दों पर लिखने में दिलचस्पी।

अँग्रेज़ी से अनुवाद: सुशील जोशी: *एकलव्य* द्वारा संचालित स्रोत फीचर सेवा से जुड़े हैं। विज्ञान शिक्षण व लेखन में गहरी रुचि।

यह लेख और इसके चित्र *एकलव्य* द्वारा प्रकाशित पुस्तक *द मैन हू टॉट इंफिनिटी* से साभार।

ऑक्सीजन अन्दर या बाहर?

गीता जोशी

यदि बच्चों से साँस लेने में इस्तेमाल होने वाली गैसों के बारे में बातचीत की जाती है तो वे अक्सर एक ही बात बोलते हैं, "हम साँस लेते समय ऑक्सीजन ग्रहण करते हैं और साँस छोड़ते वक्त कार्बन डाईऑक्साइड गैस निकालते हैं।" हाल ही में, मैं एक विद्यालय गई तो अध्यापक बच्चों से इसी विषय पर बात कर रहे थे। उन्होंने भी बच्चों को यही बात बताई कि हम साँस लेते वक्त ऑक्सीजन ग्रहण करते हैं और साँस छोड़ते हुए कार्बन डाईऑक्साइड गैस उत्सर्जित करते हैं, व ऑक्सीजन प्राण वायु है जो हमें जीवित रखती है।

बच्चों के साथ-साथ शिक्षक साथी भी इस कथन पर बहुत अच्छे से जम चुके होते हैं जिसकी एक वजह है कि हमारी पाठ्यपुस्तकों में भी यह बात बहुत बड़े-बड़े शब्दों में लिखी जाती है, जो बुनियादी रूप से यकीनन गलत तो है परन्तु सम्पूर्ण रूप से नहीं। मुझे लगा कि जब ऑक्सीजन पर शिक्षक द्वारा बात की ही जा रही है तो क्यूँ न मैं भी बच्चों के साथ इसी विषय पर कुछ बातचीत कर लूँ।

बच्चों से ऑक्सीजन पर चर्चा

मैंने सबसे पहले बच्चों के सामने यह प्रश्न रखा कि क्या हमें ऑक्सीजन दिखाई देती है? बच्चों ने जवाब दिया, "नहीं।" मैंने फिर पूछा, "तो फिर हम यह कैसे कह सकते हैं कि हमने श्वसन प्रक्रिया के दौरान जो गैस ग्रहण की है, वह ऑक्सीजन गैस ही है?" इस पर एक बच्ची बोली, "दीदी, हमारे फेफड़े सिर्फ ऑक्सीजन गैस ही ग्रहण कर सकते हैं और कोई गैस नहीं।"

मैंने एक बार फिर अपने सवाल को थोड़ा सरल करने की कोशिश की और कहा, "यह बात तो मुझे समझ आ गई कि हमारे फेफड़े सिर्फ ऑक्सीजन गैस ही ले सकते हैं पर मैं यह जानना चाह रही हूँ कि जब हम साँस लेते हैं तो हमें कैसे पता कि जो गैस हम ग्रहण कर रहे हैं, वह सिर्फ ऑक्सीजन ही है क्योंकि अभी आप सभी ने बोला कि ऑक्सीजन गैस तो दिखती ही नहीं है?"

अब बच्चे शायद मेरी बात समझ चुके थे। एक बच्चा बोला, "दीदी, जब हम साँस लेते हैं तो सारी गैसें ही अन्दर लेते हैं और ऑक्सीजन गैस

हमें दिखाई थोड़ी देती है। इसलिए जो बात कुसुम (पहली बच्ची) कह रही थी, वह सही है कि हमारे फेफड़े ऑक्सीजन गैस को रख लेते हैं और बाकी गैस बाहर निकाल देते हैं।" मैंने बोला, "लेकिन अभी तो तुम सब बोल रहे थे कि सिर्फ कार्बन डाईऑक्साइड गैस निकालते हैं।"

इस पर एक बच्चे (अरमान) ने कहा, "दीदी, क्या मैं एक प्रश्न पूछ सकता हूँ?" मैंने बोला, "हाँ, क्यों नहीं।" उसने पूछा, "हमें यह कैसे पता चलेगा कि जो गैस हमारे फेफड़ों ने अन्दर ली है, वह ऑक्सीजन गैस ही है?" दरअसल, यह प्रश्न आना बहुत ही स्वभाविक है और मुझे खुशी हुई कि बारह बच्चों की कक्षा में से एक बच्चा इस प्रश्न तक पहुँच पाया। मैंने उस बच्चे को थोड़ा रुकने के लिए बोला क्योंकि इस प्रश्न का जवाब आगे होने वाली बातचीत से अपेक्षित था।

मैंने बच्चों से कहा, "क्या एक बात तुम मुझे समझा सकते हो?" बच्चे बोले, "हाँ दीदी, ज़रूर, अगर हमें पता हो तो।" मैंने कहा, "मैंने बहुत-सी फिल्मों में देखा है और बहुत-से डॉक्टर भी मानते हैं कि यदि कोई व्यक्ति पानी में डूब जाता है और कोई दूसरा व्यक्ति उसे बाहर निकालकर माउथ-टू-माउथ साँस दे तो वह डूबा हुआ व्यक्ति ठीक भी हो जाता है। क्या तुमने भी कभी ऐसा देखा है?" बच्चे मुस्कुराते हुए बोले, "हाँ दीदी, हमने भी देखा है।" मैंने फिर पूछा, "मुझे यह समझ नहीं आता कि अगर हम सिर्फ कार्बन डाईऑक्साइड गैस छोड़ते हैं तो फिर हम किसी दूसरे व्यक्ति की जान बचाने के लिए उसे ऑक्सीजन कैसे दे सकते हैं?"

इस पर शिक्षक भी सोचने लगे और उन्होंने कहा, "इस बात को तो मैंने भी इस तरीके से कभी नहीं सोचा।" बच्चे बोले, "हो सकता है कि जो गैस हम छोड़ रहे हैं उसमें कुछ मात्रा ऑक्सीजन की भी हो।" अब बच्चे धीरे-धीरे उस बिन्दु पर पहुँच रहे थे जहाँ मैं उनको पहुँचाना चाह रही थी। अब यह प्रश्न बनता है कि ऑक्सीजन की यह मात्रा कहाँ से आई होगी और क्या हम ऑक्सीजन के अलावा कोई और गैस भी छोड़ते हैं।

बच्चों ने जवाब दिया, "जब हम साँस लेते हैं तो हवा में मौजूद सारी गैसों को ग्रहण करते हैं जिसमें ऑक्सीजन की कुछ मात्रा फेफड़े द्वारा सोख ली जाती है और कुछ मात्रा बाकी गैसों के साथ बाहर निकाल दी जाती है।" एक बच्चे ने कहा, "जब हम साँस लेते हैं, उस समय बहुत प्रकार की गैसें हम अन्दर लेते हैं, तो शायद कुछ गैसों के आपस में मिलने से ऑक्सीजन या कोई अन्य गैस बनती हो।" तब एक और बच्चा बोला, "चूँकि कार्बन डाईऑक्साइड गैस फेफड़े द्वारा ग्रहण नहीं की जा सकती है तो वह पूरी-की-पूरी बाहर निकाल दी जाती है और उसकी मात्रा ऑक्सीजन गैस से ज़्यादा होती होगी।" यहाँ पर मैंने बच्चों से एक और प्रश्न किया, "छोड़ी गई गैस में

कार्बन डाईऑक्साइड गैस ज़्यादा है, इस बात की पुष्टि कैसे कर सकते हैं?" इस बात का बच्चों के पास जवाब नहीं था।

एक प्रयोग

मैंने बच्चों से एक प्रयोग करने को कहा, "हम यह जानने की कोशिश करते हैं कि श्वसन के दौरान छोड़ी गई गैस में कार्बन डाईऑक्साइड गैस की मात्रा ज़्यादा होती है क्या।" सभी बच्चे तैयार हो गए। बच्चों को सबसे पहले चूने के पानी का घोल बनाना था जिसके लिए बच्चों ने विद्यालय की रंगाई-पुताई के लिए आए चूने का उपयोग किया। उन्होंने आधा चम्मच चूने को आधे गिलास से थोड़े ज़्यादा पानी में डालकर उसे अच्छे तरीके से घोल लिया। उसके बाद चूने के घोल को कुछ समय के लिए छोड़ दिया। कुछ समय के बाद निथारकर चूने के पानी की कुछ मात्रा को बच्चों ने परखनली में भर लिया और एक स्ट्रॉ की सहायता से साँस को उस परखनली में छोड़ना शुरू किया। बच्चों को यह अवलोकन करना था कि चूने के पानी के साथ क्या होगा।

बच्चों के अवलोकनों में यह बात सामने आई कि चूने का पानी सफेद यानी दूधिया रंग का हो गया। शिक्षक ने कहा, "यह अवलोकन इस बात की पुष्टि करता है कि साँस छोड़ते वक्त कार्बन डाईऑक्साइड की मात्रा काफी होती है क्योंकि जो प्रयोग अभी आप सभी ने किया, वह कार्बन डाईऑक्साइड गैस की उपस्थिति को सिद्ध करने का प्रयोग था।"

इस पर एक बच्चा बोला, "क्या हम इस चूने के पानी को पेड़ के

चित्र-1: *स्ट्रॉ की सहायता से साँस को परखनली में छोड़ता एक बच्चा।*

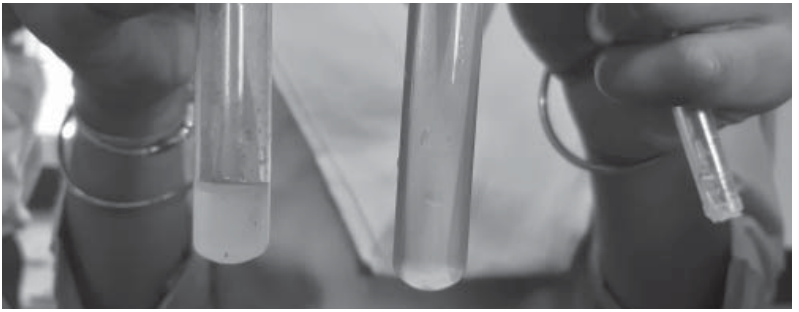

चित्र-2: साँस छोड़ने पर चूने का पानी सफेद यानी दूधिया रंग का हो गया।

पत्तों पर बाँधकर देख सकते हैं कि वे अभी कौन-सी गैस छोड़ रहे होंगे?" बच्चों ने ऐसा ही किया और उनके अवलोकनों में यह आया कि चूने का पानी जैसा था, वैसा ही बना रहा, कुछ भी नहीं बदला। इसका मतलब पेड़ अभी कार्बन डाईऑक्साइड गैस नहीं छोड़ रहे हैं और अगर छोड़ भी रहे हैं तो उसकी मात्रा काफी कम है।

मैंने अरमान से जानना चाहा कि उसे प्रश्न का जवाब मिला या नहीं। उसने कहा, "दीदी, मुझे मेरे प्रश्न का जवाब मिल गया।" मैंने बात जारी रखते हुए कहा, "क्या तुम बाकी बच्चों को समझा सकते हो?" अरमान बोला, "हाँ, जब हमने साँस लेते वक्त हवा ग्रहण की तो उसमें सभी प्रकार की गैसें उपस्थित थीं और जो गैसें हमने बाहर निकालीं, उसमें कार्बन डाईऑक्साइड की मात्रा कुछ अधिक थी। इसका मतलब तो यही हुआ न कि अन्दर ली गई साँस में से जो गैस हमारे फेफड़ों ने ग्रहण

चित्र-3: पेड़ की पत्तियों में चूने के पानी को बाँधते हुए बच्चे।

की, वह ऑक्सीजन ही है और बढ़ी हुई कार्बन डाईऑक्साइड के साथ अन्य गैसें व कुछ मात्रा ऑक्सीजन की भी बाहर निकाल दी गई।"

बच्चों ने एक बहुत ही शानदार अवलोकन और किया जो मैंने भी नहीं सोचा था। उन्होंने बोला, "दीदी, पत्तियों पर बाँधे चूने के पानी में पानी की मात्रा पहले से कुछ बढ़ गई है, ऐसा क्यूँ?" मैंने बच्चों को इस प्रश्न (वाष्पोत्सर्जन प्रक्रिया) के साथ छोड़ा और इस पर सोचने को कहा और बोला, "जब हम अगली बार मिलेंगे तो इस पर बात करेंगे।"

मनुष्यों में साँस लेने और छोड़ने में गैसों का प्रतिशत

गैस	साँस द्वारा अन्दर ली गई	साँस द्वारा छोड़ी गई
ऑक्सीजन	21	16
कार्बन डाईऑक्साइड	0.04	4

गीता जोशी की बच्चों के साथ चर्चा पर आधारित इस लेख में एक महत्वपूर्ण आयाम और जुड़ा हुआ है कि चाहे छोड़ी हुई साँस का चूने के निथरे हुए पानी पर असर देखना हो या फिर पेड़ों की पत्तियों पर पॉलीथीन बैग में चूने का पानी भरकर बाँधने का प्रयोग हो – इन सबमें तुलना का प्रावधान (कन्ट्रोल) रखना बहुत ही ज़रूरी है। यानी कि जब छोड़ी हुई साँस को स्ट्रॉ के ज़रिए निथरे हुए चूने के पानी में से गुज़ारें, तो साथ ही यह भी करना होगा कि सामान्य वातावरण की हवा को भी एक दूसरे गिलास में चूने का पानी भरकर उतने ही समय के लिए गुज़ारें। तभी हम पक्के तौर पर कह सकते हैं कि आसपास की हवा की तुलना में, साँस से छोड़ी हुई हवा में कार्बन डाईऑक्साइड की मात्रा ज़्यादा है।

साथ ही, ये प्रयोग साँस में छोड़ी गई हवा में कार्बन डाईऑक्साइड की मात्रा के बारे में ज़रूर कुछ संकेत देते हैं, परन्तु साँस में अन्दर ली गई एवं छोड़ी गई हवा में ऑक्सीजन की मात्रा में क्या बदलाव होता है, उनके बारे में कुछ नहीं बताते। इसकी जाँच के लिए पाठक कुछ और प्रयोग सुझा सकें तो अन्य सब को भी इस सम्बन्ध में कुछ सुझाव और विचार मिलेंगे।

इस विषय पर *संदर्भ* के अंक-89 में प्रकाशित लेख *क्या रात में पेड़ के नीचे सोना ठीक है?* और अंक 117 में लेख *गाय, पीपल और तुलसी में श्वसन* भी देखें।

– सम्पादक मण्डल

गीता जोशी: रसायन विज्ञान में स्नातकोत्तर। वर्तमान में अज़ीम प्रेमजी फाउण्डेशन, उधमसिंह नगर में विज्ञान विषय पर काम करती हैं।

सभी फोटो: गीता जोशी।

बच्चों का पूर्वज्ञान बनाम वैज्ञानिक तर्क

माधव केलकर

मेरी एक शिक्षक प्रशिक्षक से बातचीत हो रही थी। हम चर्चा कर रहे थे कि एन.सी.एफ. 2005 के मुताबिक बच्चों को कक्षा में पढ़ाते समय उनके पूर्वज्ञान और किसी अवधारणा पर बच्चे पहले से क्या जानते हैं, को भी कक्षा में स्थान मिलना चाहिए। इसके लिए पहल शिक्षक को करनी होती है कि वह बच्चों को बोलने के मौके दें, बच्चे क्या सोचते हैं उसे व्यक्त करने के लिए प्रोत्साहित करें। हमारी आपसी

चर्चा में बात यहाँ आकर उलझने लगी थी कि यदि बच्चों का पूर्वज्ञान विज्ञान सम्मत न हो या संवैधानिक मूल्यों के खिलाफ जाता हो तो कक्षा में द्वन्द्व की स्थिति बन सकती है। क्या तब भी उस पूर्वज्ञान को कक्षा में व्यक्त करने की अनुमति शिक्षक को देना चाहिए या बच्चे को अपनी बात कहने से वंचित रखना उचित होगा?

थोड़ी देर की बहस के बाद हमारी इस बात पर सहमति बनने लगी कि पूर्वज्ञान का सृजन बच्चे ने अपने परिवेश से किया है। वह परिवेश सामाजिक या प्राकृतिक हो सकता है। इस परिवेश से ही बच्चे का लेन-देन होता रहता है इसलिए इस ज्ञान को सिर्फ इसलिए रोकने में कोई तुक नहीं है कि वह अवैज्ञानिक है, छद्म विज्ञान है या संवैधानिक मूल्यों के खिलाफ है। वह बात कक्षा में आ जाए, हम कक्षा में उस पर चर्चा करें और अगर ऐसा हो तो उस अवैज्ञानिक तथ्य को इंगित करें। कौन-सी बात संवैधानिक मूल्यों के खिलाफ जाती है, इस पर बातचीत करके बच्चों को अपने पूर्वज्ञान में संशोधन करने का मौका देना चाहिए।

मेरे मित्र ने पूछा, "क्या आपके साथ कभी ऐसे हालात बने हैं जब कक्षा में ऐसी कोई जानकारी आई हो और आप ऐसी उलझन में फँसे हों?"

मैंने कहा, "हाँ, ऐसा मेरे साथ हुआ है। मैं आपको इसके बारे में थोड़ा तफ्सील से बताता हूँ।"

कक्षा-अवलोकन एवं चर्चा

पिछले दिनों *एकलव्य* द्वारा उठाए गए एक काम के तहत मैं महाराष्ट्र की एक शासकीय आश्रमशाला की कक्षा छठवीं में कक्षा-अवलोकन के लिए गया था। शिक्षक से दो-चार मिनट चर्चा के बाद वे मुझे कक्षा में बिठाने के लिए सहर्ष तैयार हो गए। उन्होंने अनुरोध किया, चूँकि प्रयोग-गतिविधि करवाते समय मदद की ज़रूरत होगी इसलिए मैं उनकी मदद करूँ और बीच-बीच में कक्षा में किसी मुद्दे पर चर्चा में सक्रिय भागीदारी भी निभाऊँ। मैंने भी उनके अनुरोध को सहर्ष स्वीकार कर लिया।

शिक्षक आज कक्षा को - चुम्बक के मज़ेदार खेल - पाठ पढ़ाने वाले थे। उन्होंने चर्चा शुरू की, "किस-किस विद्यार्थी ने चुम्बक देखा है?" क्या वे देखे गए चुम्बक का चित्र बोर्ड पर बना सकते हैं?

बच्चों ने बोर्ड पर छड़ चुम्बक, नाल चुम्बक व चकती चुम्बक के चित्र बनाए। आम तौर पर पाठ्यपुस्तक में इन तीनों चुम्बकों के चित्र बने होते हैं इसलिए इन्हें देखकर मैंने पूछा, "क्या आप सभी ने वास्तव में इन चुम्बकों को देखा है और अगर देखा है, तो कहाँ?" कुछ-कुछ जवाब आने शुरू हो गए। काफी बच्चों ने कहा कि उनके घर पर चुम्बक रखा था।

चूँकि ज़्यादातर बच्चे आदिवासी अंचल के दूर-दराज़ के गाँवों में रहने वाले थे इसलिए मेरी सहज जिज्ञासा हुई यह जानने की कि बच्चों के घरों पर चुम्बक का क्या काम हो सकता है। सो मैंने पूछ ही लिया, "आपके घर पर चुम्बक का क्या काम है? आप चुम्बक से क्या करते हो?"

कुछ बच्चों ने बताया कि घर पर यदि किसी को बिच्छू काट ले तो काटे हुए स्थान पर चुम्बक को कुछ देर पकड़कर रखने से बिच्छू का ज़हर उतर जाता है।

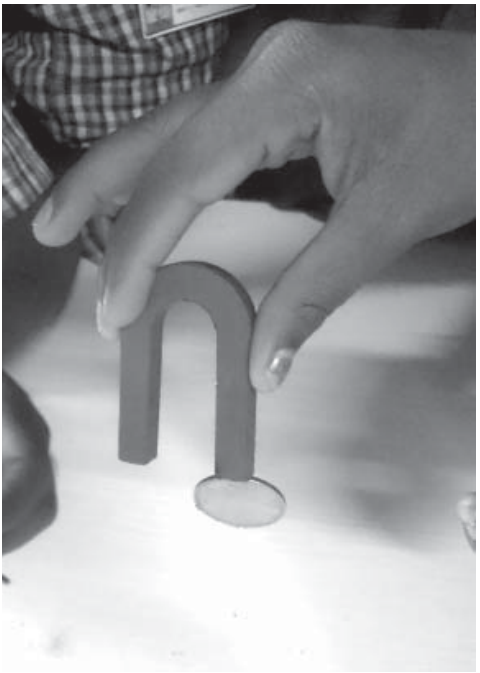

मुझे यह बात रोचक लगी कि चुम्बक का इस तरह भी उपयोग हो सकता है। मैंने बच्चों से पूछा, "आप इन तीन चुम्बक (छड़, नाल व चकती) में से कौन-से चुम्बक का उपयोग बिच्छू का ज़हर उतारने में करते हो?"

बच्चों ने बताया कि वे लोग ज़हर उतारने में चकती चुम्बक का उपयोग करते हैं।

आजकल बढ़ते शहरीकरण के बाद बिच्छू दिखाई देने व बिच्छू काटने की घटनाएँ ज़्यादातर ग्रामीण इलाकों में ही होती हैं। मुझे लगा इस मुद्दे पर थोड़ी और बात करनी चाहिए। इसलिए मैंने पूछा, "आप में

चुम्बक से चिपकने वाली वस्तुएँ	चुम्बक से न चिपकने वाली वस्तुएँ
पंखा, खिड़की का पल्ला, दरवाज़ा, कम्पास बॉक्स, हेयर क्लिप, अँगूठी, ताला, चाबी, कील, हथौड़ी, ऑलपिन, पिन, छड़ चुम्बक आदि।	थाली, कटोरी, चम्मच, परिचय पत्र, पानी की बोतल, जूते, चूड़ी, चॉक, बैग, किताब, फूल, चप्पल, मिट्टी, छड़ चुम्बक आदि।

बिच्छू व उसका ज़हर

बिच्छू ऑर्थोपोडा संघ का सदस्य है। इसकी आठ टाँगे होती हैं, दो चिमटे जैसी पकड़ वाली भुजाएँ, पीछे एक ऊपर उठा हुआ भाग जिसमें डंक होता है। आम तौर पर डंक अपने शिकार या दुश्मन को पस्त करने के लिए होता है। बिच्छू की कई प्रजातियाँ पाईं जाती हैं, इनमें से बहुत ही कम प्रजातियाँ प्राण लेने जैसी ज़हरीली होती हैं। आम तौर पर वयस्क व्यक्तियों पर बिच्छू के ज़हर का एकदम स्थानीय प्रभाव पड़ता है जैसे दर्द, जलन, सूजन, कभी-कभी बेचैनी आदि। बिच्छू के डंक से ज़्यादा नुकसान बच्चों को होता है। लेकिन तुरन्त इलाज मिल जाए तो मौत का खतरा खत्म हो जाता है। बिच्छू के डंक से इन्सानों की मौत की सम्भावना बेहद कम है।

से कितने बच्चों को बिच्छू ने काटा है?"

कक्षा में चार-पाँच बच्चों ने हाथ लहरा दिए।

मैंने पूछा, "आपको बिच्छू ने कहाँ काटा था?"

जवाब में दो ने 'हाथ' में बताया। दो ने बताया 'पाँव' में।

लेकिन इन सभी ने बताया कि बिच्छू ने उन्हें घर पर छुट्टियों के दौरान काटा था, आश्रमशाला में नहीं। सभी ने बिच्छू काटी जगह पर चुम्बक को देर तक लगाकर रखने की बात कही। कोई और इलाज हुआ या नहीं, इसके बारे में उन्हें याद नहीं था। कक्षा के कुछ और बच्चों ने भी यही जानकारी दी।

चुम्बक के साथ गतिविधि

मैं पशोपेश में था कि इस बिच्छू-चुम्बक प्रकरण को आगे बढ़ाया जाए या चुम्बक के अध्याय पर आगे चलते रहें। आखिरकार, मुझे व शिक्षक को चुम्बक की अन्य अवधारणाओं पर आगे जाना ही उचित लगा। हमने शिक्षक की मदद से चुम्बक के गुणधर्मों पर गतिविधि जारी रखते हुए कक्षा व आसपास चुम्बक से चिपकने वाली और न चिपकने वाली वस्तुओं को पहचाना और उनकी सूची बनाना शुरू किया।

इस सूची में मिट्टी देखकर आपको हैरत हो रही होगी। दरअसल, हुआ कुछ यूँ था कि आसपास के चुम्बकीय व अचुम्बकीय पदार्थों की सूची बनाते समय कुछ बच्चों ने चुम्बक को मिट्टी में घूमाया और देखा कि मिट्टी के कुछ कण चुम्बक से चिपक रहे हैं। बच्चों के दो समूहों ने आपसी चर्चा से ही इस बात का निर्णय ले लिया कि मिट्टी के कुछ कण चुम्बक से चिपकते हैं। पूरी मिट्टी नहीं चिपक रही है। इसलिए मिट्टी को न चिपकने वाली सूची में लिखना चाहिए।

इसी तरह लड़कियों के एक समूह

ने बैंच-डेस्क पर चढ़कर कक्षा में पंखे की पत्तियों पर चुम्बक सटाकर इस बात की तस्दीक कर ली कि पंखे की पत्तियाँ चुम्बक से चिपकती हैं और पंखे का बीच वाला गोल हिस्सा भी। (बच्चों द्वारा पंखे को छूने से पहले शिक्षक ने मुझे आश्वस्त कर दिया था कि बिजली नहीं होने से जोखिम नहीं है। दूसरी बात पंखे का बटन भी बन्द है।)

चुम्बक से चिपकने वाली व न चिपकने वाली वस्तुओं की सूची में एक नाम छड़ चुम्बक भी था। बच्चों से पूछा गया, "इसका क्या मतलब हुआ?" तो बच्चों ने दो छड़ चुम्बक हाथ में लेकर दिखाया, "देखिए, ये दो सिरे आपस में चिपक रहे हैं और इन दो सिरों को पास लाने पर चुम्बक चिपकना बन्द हो गया है।"

विज्ञान शिक्षक ने बच्चों का ध्यान इस बात पर दिलाया, "आप चुम्बक के सिरों पर लिखे अक्षर 'एन' और 'एस' पर भी ध्यान दीजिए और बताइए कि किन सिरों को पास लाने से चुम्बक आपस में चिपकते हैं और किन सिरों को पास लाने पर नहीं चिपकते।"

जल्द ही बच्चों ने छड़ चुम्बक की मदद से इसे करके देखा और बताया, "एन-एन या एस-एस सिरों को पास लाने से चुम्बक आपस में नहीं चिपकते। लेकिन एन-एस सिरे को पास लाने पर चुम्बक चिपकते हैं।"

शिक्षक ने चुम्बक के आकर्षण-विकर्षण के गुण पर चर्चा की। फिर नाल चुम्बक व चकती चुम्बक में आकर्षण-विकर्षण के गुण को देखा। यहाँ तक आकर हमने चुम्बक के रुटीन अध्याय को रोका।

एक बार फिर चुम्बक से चिपकने या न चिपकने वाली सूची पर आए। इस सूची में सभी वस्तु या पदार्थ ठोस थे। इसलिए एक बोतल में पानी लेकर उसे चुम्बक के पास लाकर देखा कि क्या चुम्बक पानी को अपनी ओर खींच रहा है जैसे लोहे की वस्तुओं को खींच रहा था। हमारे पास तेल, दूध जैसे तरल नहीं थे इसलिए हम तेल व दूध से चुम्बक चिपकाकर नहीं देख पाए। लेकिन विज्ञान शिक्षक ने कहा कि वे बाद में बच्चों के साथ इसे करके देखेंगे। इसी तरह बच्चों का ध्यान इस ओर भी दिलवाया गया कि क्या चुम्बक उनकी अँगुलियों से चिपक रहा है, क्या बालों से चिपक रहा है, क्या कान से चिपक रहा है, क्या पाँव से चिपक रहा है आदि। बच्चों ने इसे करके देखा और बताया कि चुम्बक अँगुली, बाल, हाथ, पाँव – किसी से भी नहीं चिपक रहा है। यानी इन्सानी शरीर को चुम्बक अपनी ओर नहीं खींचता।

चुम्बक और बिच्छू का ज़हर

इतनी चर्चा हो जाने के बाद एक बार फिर हम बिच्छू के काटने और चुम्बक के उपयोग की ओर आ गए। बच्चों से पूछा, "क्या आपके गाँव में बिच्छू काटने की वजह से किसी की मौत हुई है? क्या लोग चुम्बक लगाने की बजाए अस्पताल भी जाते हैं?" कुछ बच्चों का कहना था, "हाँ, अस्पताल भी जाते हैं। लेकिन किसी की मौत की जानकारी नहीं है।"

कुछ बच्चों ने, जिन्होंने बताया था कि उन्हें बिच्छू ने डंक मारा था, उन्होंने बताया कि डंक वाली जगह पर दर्द, जलन होती है, डर लगना, बेचैनी, पसीना छूटना वगैरह होता है। बच्चों का ध्यान फिर एक बार इस तथ्य की ओर दिलवाया कि चुम्बक इन्सानी शरीर से न चिपकता है और न शरीर को दूर ढकेलता है। यानी जैसा लकड़ी या प्लास्टिक के साथ होता है वैसा ही इन्सानी शरीर के साथ भी। इसी तरह हमारे आसपास के तरल पदार्थों जैसे पानी, दूध, तेल वगैरह को भी चुम्बक न अपनी ओर खींचता है, न परे ढकेलता है।

हो सकता है बिच्छू द्वारा डंक मारी जगह पर चुम्बक लगाने से दर्द में कुछ राहत मिलती हो, डर कम हो जाता हो, बेचैनी भी कम हो जाती हो, मन को सुकून मिलता हो। जहाँ आसानी-से डॉक्टर उपलब्ध न हो वहाँ बीमार इन्सान के मनोबल को बनाए रखना भी ज़रूरी है।

अभी तक हमने जो कुछ करके देखा है उससे तो नहीं लगता कि बिच्छू के ज़हर को उतारने में चुम्बक की कोई भूमिका होती होगी। तो बेहतर होगा कि हम बिच्छू के काटने और चुम्बक से उसकी चिकित्सा पर कुछ और अध्ययन और प्रयोग करके देखें, बिच्छू के ज़हर पर कुछ

जानकारी पढ़ें, गाँव में बिच्छू का ज़हर उतारने के लिए और किस तरह के इलाज किए जाते हैं, इसे मालूम करें, गाँव से कुछ आँकड़े जमा करें कि बिच्छू के ज़हर से कितनी मौत हुई हैं आदि। इतना सब करने के बाद हमें किसी निष्कर्ष पर पहुँचना चाहिए। विज्ञान ऐसे ही तर्क, तथ्यों, आँकड़ों, व अनुसन्धान से आगे बढ़ता है।

ज़ाहिर-सी बात है कि मेरे प्रशिक्षक मित्र को यह अनुभव अच्छा लगा। उन्होंने भी अपना एक अनुभव सुनाया, उसे अगली बार के लिए मुल्तवी करते हैं।

बिच्छू का ज़हर उतारने हेतु प्रचलित सामान्य उपचार

महाराष्ट्र के विविध आदिवासी व ग्रामीण अंचल में बिच्छू के काटने पर जो उपचार किए जाते हैं, उससे सम्बन्धित जानकारी हमारे प्रोजेक्ट में कार्य कर रहे कार्यकर्ताओं ने अलग-अलग आश्रमशालाओं के बच्चों, शिक्षकों व स्थानीय लोगों से बातचीत करके प्राप्त की है। इसमें खास बात यह है कि यदि आश्रमशाला में किसी बच्चे को बिच्छू डंक मारे तो बच्चे को डॉक्टर के पास लेकर जाते हैं क्योंकि आश्रमशाला प्रशासन के पास एम्बुलेंस, डॉक्टर वगैरह की व्यवस्था आसानी-से हो जाती है। लेकिन घर-परिवार में ऐसी घटना हो तो लोग डॉक्टर के पास जाने के अलावा कुछ और तरीकों की सहायता से उपचार की कोशिश करते हैं।

- आश्रमशाला के बच्चों ने बताया कि जब बिच्छू काटता है तो चुम्बक को हल्का गरम करके घाव वाली जगह पर घिसते या लगाते हैं।
- कभी-कभी बिच्छू द्वारा डँसी जगह को सुई से टोंचकर वहाँ से खून निकाल देते हैं जिससे ज़हर नहीं चढ़ता।
- कई मौकों पर डॉक्टर के पास भी लेकर जाते हैं।
- शिक्षक से बातचीत के दौरान उन्होंने बताया की बिच्छू के काटने पर ज़्यादातर लोग पुजारी (बाबा) के पास ले जाते हैं, जो झाड़फूँक करते हैं।
- बिच्छू ने जहाँ काटा है वहाँ फिटकरी भी लगाई जाती है। कुछ शिक्षकों का कहना था कि फिटकरी गर्म करके लगाते हैं। (कुछ शिक्षकों का कहना था कि फिटकरी के बारे में सुना हुआ है इसलिए दूसरों को बता देते हैं। उनका अपना कोई अनुभव नहीं है।)
- एक शिक्षक के मुताबिक किसी को बिच्छू काट ले तो उस व्यक्ति के पेट पर हँसिया (एक लोहे का औज़ार) गर्म करके लगाते हैं जिससे वो ठीक हो जाता है।

- एक शिक्षक ने बताया कि बिच्छू काटी जगह पर इमली का बीज घिसकर लगाया जाता है।
- किसी बिच्छू को मारकर उसका लेप डँसी हुई जगह पर लगाया जाता है।
- अम्बाड़ी भाजी के पत्तों को पीसकर डँसी हुई जगह पर लगाया जाता है।
- बिच्छू काट ले तो किसी बिच्छू को मारकर, जलाकर उसकी राख को बिच्छू डँसी जगह लगाने से ज़हर उतर जाता है।

बिच्छू के डंक मारने पर सबसे पहला असर जो दिखता है, वह है तेज़ दर्द देने वाला घाव जिसके साथ घबराहट, बेचैनी, जलन, सूजन और कभी-कभी खुजली। कभी-कभी साँस लेने में दिक्कत महसूस होना। लेकिन किसी बिच्छू के डंक मारे व्यक्ति का प्राथमिक उपचार तो यही होना चाहिए न कि उसका दर्द कम हो जाए, घबराहट-बेचैनी कम हो, वो खुद को बेहतर महसूस करे।

ऊपर बताए गए तरीकों को भी इसी नज़रिए से देखना चाहिए कि आदिवासी गाँवों में लोग अपने पारम्परिक चिकित्सा-ज्ञान का उपयोग मरीज़ के मनोबल को बढ़ाने में, दर्द से राहत दिलवाने में करते हैं। यदि काटने वाला बिच्छू ज़हरीला न हुआ तो पारम्परिक चिकित्सा से ही इलाज हो जाता है। यदि बिच्छू ज़हरीला है तो मरीज़ को पारम्परिक तरीकों से चिकित्सा करने के बाद आगे के इलाज के लिए किसी डॉक्टर के पास ले जाने में संकोच नहीं करते। आखिरकार, हर चिकित्सा पद्धति की रोगों से निपटने की अपनी सीमाएँ हैं और इस तरह की चिकित्सा पद्धति का उपयोग करने वाले लोग इन सीमाओं से भलीभाँति वाकिफ होते हैं।

माधव केलकर: *संदर्भ* पत्रिका से सम्बद्ध हैं।
सभी फोटो: माधव केलकर।

नंदा मैडम की कक्षा

सुधीर श्रीवास्तव

आज स्कूल आते समय नंदा बहुत खुश थी। बात दरअसल यह थी कि वह पिछले कई दिनों से यह तय नहीं कर पा रही थी कि कक्षा-3 के बच्चों के साथ संख्याओं की अवधारणा पर काम कैसे किया जाए। यहाँ तक आते-आते बच्चों ने सौ तक की गिनती लिखना-पढ़ना और चीज़ें गिनना तो सीख लिया है, आसानी-से जोड़ने-घटाने के सवाल भी कर लेते हैं। हासिल और उधार के प्रश्न भी अभ्यास के कारण कर लेते हैं। एक तरह से बच्चों ने इन तरीकों को याद कर लिया है। लेकिन वह जानती थी कि बच्चों को यह पता नहीं है कि वे ऐसा क्यों कर रहे हैं।

मन ही मन में कक्षा की तैयारी

वह चाहती थी कि बच्चे लिखी हुई संख्याओं को न केवल नाम से पहचानें बल्कि उनके अर्थ को भी समझें। वे समझें कि जिन अंकों की मदद से संख्या लिखी गई है, उनको वहाँ एक खास मतलब से लिखा गया है। एक ही अंक अलग-अलग जगहों पर अलग-अलग अर्थ रखते हैं। ऐसी और

भी बातें हैं। लेकिन यह किया कैसे जाए? इसी उधेड़बुन में कई दिन लग गए थे। आज सुबह उसे एकाएक उपाय सूझा, क्यों न बच्चों को उन परिस्थितियों में ले जाया जाए जिन परिस्थितियों में सम्भवतः पुराने लोगों ने संख्या पद्धति के बारे में सोचा होगा। हो सकता है वह अपनी कोशिश में सफल न हो लेकिन यह तो तय है कि बच्चों को कुछ सोचने का मौका मिल सकेगा। उसने अपने दिमाग में दो-तीन दिनों के काम का एक मोटा-मोटा खाका तैयार कर लिया था। उसकी कल्पना में कई बातें आ-जा रही थीं - बच्चे ये सवाल करेंगे, मेरे जवाब ऐसे होंगे, मेरे प्रश्न क्या होंगे? बात कैसे शुरू होगी?

कक्षा की शुरुआत कहानी से

जैसे ही वह कक्षा में आई, बच्चों ने चिल्लाकर कहा, "गुड मॉ ऽ ऽ र्निंग मैडम।" "गुड मार्निंग बच्चो!" नंदा ने उसी लहज़े में जवाब दिया। बच्चों को शान्त और स्थिर होने में एकाध मिनट लग गया, तब तक नंदा उन्हें मुस्कराती देखती रही। बच्चों को उसका यह तरीका मालूम था। जब कक्षा शान्त हो गई तो उसने कहा, "बच्चो, आज मैं तुम्हें एक कहानी सुनाने जा रही हूँ। यह कहानी बहुत पुराने ज़माने की है, इतने पुराने कि उस समय लोगों को थोड़ी-बहुत ही गिनती आती थी पर मज़े की बात यह थी कि उनका काम रुकता नहीं था।"

"सुनोगे?"

"हाँ, हाँ .... ज़रूर सुनेंगे।" सभी बच्चों ने एक स्वर में कहा।

नंदा ने कहना शुरू किया, "एक छोटे-से गाँव में एक किसान रहता था। उसने अपने घर के पीछे बाड़ी में कई तरह के फल और सब्ज़ियाँ उगा रखी थीं। वहाँ से फल और सब्ज़ियाँ तोड़ता, अपनी ज़रूरत के हिसाब से अपने पास रखता, बाकी मुहल्ले-पड़ोस में बाँट देता। गाँव के अन्य लोग भी ऐसे ही अपनी चीज़ें आपस में बाँटा करते थे। एक बार उस किसान की बाड़ी में खूब अमरूद फले, बड़े-बड़े, हरे-पीले, मीठे अमरूद। वह टोकरी भर अमरूद लेकर घर आया। अचानक उसके मन में विचार आया कि इन्हें गिनकर देखा जाए कि ये हैं कितने। वह टोकरी से एक-एक अमरूद निकालकर बाहर रखता गया और गिनता गया - एक, दो, तीन, चार, पाँच, छह, सात, आठ, नौ, दस...। गिनती तो खत्म हो गई, मगर अमरूद बचे रहे। अब क्या करें? उसे उतनी ही गिनती आती थी जितनी उसके हाथ में उँगलियाँ थीं। वह सोचता रहा, सोचता रहा। आखिर उसे एक तरकीब सूझ ही गई। उसने दस तक की गिनती का ही उपयोग कर अपने सारे अमरूद गिन लिए।"

इतना कहकर नंदा चुप हो गई। बच्चे तो मानो उसी दुनिया में घूम रहे थे। कुछ क्षणों बाद चुप्पी टूटी। एक

बच्ची ने पूछा, "उस किसान ने सारे अमरूद कैसे गिने होंगे मैडम?" "यही तो हमें जानना है। जैसा उस किसान ने किया, कुछ वैसी ही कोशिश हम भी करके देखेंगे।"

गिनती, एक अलग तरीके से

नंदा ने अपने बैग से एक थैली निकाली और उसमें रखे इमली के बीजों को टेबल पर उलट दिया। उसने बच्चों से कहा, "मान लो ये अमरूद हैं, इन्हें हम गिनेंगे और हाँ, ध्यान यह रखना है कि हमें केवल दस तक ही गिनती आती है। हम गिनते समय ग्यारह, बारह, तेरह और इसके आगे की गिनती का उपयोग नहीं करेंगे।"

एक बच्चा टेबल के पास आया। उसने एक-एक बीज निकालकर अलग रखते हुए गिनना शुरू किया, लेकिन दस तक गिनने के बाद वह रुक गया, सोचने लगा, अब क्या। कक्षा के बच्चे खुसुर-फुसुर कर रहे थे। नंदा ने उन्हें चुप कराने की कोशिश नहीं की। थोड़ी देर में एक बच्ची ने पूछा, "मैडम! हम दस से आगे नहीं गिन सकते क्या?"

"गिनना तो दस के आगे भी है किन्तु हम ग्यारह, बारह, तेरह, ऐसे नहीं गिन सकते।" नंदा ने एक बार फिर अपनी शर्त समझायी।

"तो क्या हम बचे हुए को फिर से नहीं गिन सकते?" बच्ची ने कुछ सोचते हुए दोबारा पूछा।

यही तो समस्या का हल था। उसे उम्मीद नहीं थी कि बच्चे इतनी जल्दी इसे ढूँढ़ लेंगे, उसने कहा, "करके देखना पड़ेगा।"

लेकिन यह विचार पूरी कक्षा को एक दिशा दे गया। उस बच्ची ने कहा, "मैं गिनकर देखती हूँ।"

उसने पहले से गिने दस बीजों के ढेर को किनारे खिसकाया और बचे हुए बीजों में से एक-एक बीज निकालते हुए गिनना शुरू किया। देखते-देखते दस बीजों की एक दूसरी ढेरी बन गई। नंदा ने उसकी पीठ थपथपाकर कहा, "बहुत अच्छा, बहुत ही अच्छा!"

बच्ची के चेहरे पर एक मुस्कराहट आई। अब थोड़े-से बीज बच गए थे। नंदा ने पूछा, "अब कौन गिनेगा?"

'मैं, मैं, मैं,' के शोर से कक्षा भर गई। सारे बच्चों के हाथ उठे हुए थे। पीछे बैठे कुछ बच्चे घुटनों पर, तो कुछ पूरी तरह खड़े हो गए। सबकी इच्छा थी कि उन्हें भी मौका मिले।

बच्चों ने रास्ता ढूँढ़ लिया था। इतना आनन्द उसे कभी न मिलता यदि वह खुद हल बता देती। उसकी नज़र एकाएक उस बच्चे पर पड़ी जो इस पूरे माहौल से अप्रभावित चुप बैठा था। नंदा ने कक्षा को शान्त करते हुए कहा, "ठीक है, ठीक है, मुझे पता चल गया है कि तुम सभी गिन सकते हो। मैं दयानन्द को मौका दूँगी।" उस शान्त बैठे बच्चे को अपने पास बुलाते हुए उसने कहा, "आओ

दयानंद, मेरे पास आओ।" दयानंद सामने आया, उसने बिना कुछ पूछे बचे हुए बीजों को गिनना शुरू किया। एक, दो, तीन, चार, पाँच, छह और सात, बस। नंदा को आश्चर्य हुआ और खुशी भी। उसे लग रहा था कि दयानंद किसी मुश्किल में है – शायद कक्षा में चल रही बातचीत उसे समझ में नहीं आ रही हो, शायद उसकी तबीयत ठीक न हो। लेकिन उसने तो बिलकुल सही ढंग से गिना। फिर भी उसे दयानंद का ध्यान रखना होगा। मन ही मन निश्चय कर उसने कहा, "वाह! वाह! बहुत अच्छे, बैठो।" बच्चों का ध्यान तीनों ढेरियों की ओर लाते हुए उसने कहा, "अब हमें बताना है कि कुल कितने बीज हैं।"

"सत्ताईस," सब बच्चे ज़ोर-से चिल्ला उठे।

नंदा मुस्कराई, फिर धीरे-से उसने कहा, "हम तो यह मानकर चल रहे हैं कि हमारी गिनती दस तक है, ग्यारह नहीं है, बारह नहीं है, तो सत्ताईस होगा क्या?" बच्चों की आवाज़ें आईं, "ओह।" उन्हें यह समझ में आ रहा था कि बीज हैं तो सत्ताईस लेकिन उन्हें सत्ताईस नहीं कहना है। सब सोचने लगे कि अब क्या करें।

नंदा ने कहा, "तुम लोग चाहो तो एक-दूसरे से बातचीत कर सकते हो।" दो-चार मिनट की बातचीत के बाद कुछ चेहरों पर मुस्कान दिखाई पड़ने लगी। नंदा ने समझ लिया, बच्चों ने कुछ पा लिया है।

उसने सोचा, बच्चों को पहल करने दूँ। वह चुप रही। बच्चों का धैर्य व्यग्रता में बदल रहा था। अन्ततः उनसे रहा नहीं गया। वे बोल पड़े, "मैडम, अब बताएँ क्या?"

"ज़रूर, लेकिन एक-एक करके," नंदा ने कहा।

एक बच्ची खड़ी हुई। उसने अपने दोनों हाथों की सभी उँगलियों को पूरा फैलाकर कहा, "इतने, फिर इतने।" आखिरी बार उसने अपनी केवल सात उँगलियाँ ही दिखाईं।

नंदा अवाक होकर उसकी ओर देखती रह गई। उसने सोचा न था कि ऐसा जवाब भी आ सकता है। वह आश्चर्य-से बोल पड़ी, "वाह! क्या बात है? तुमने तो कमाल कर दिया।" आगे बढ़कर उसने बच्ची को अपने से चिपका लिया और फिर उसकी पीठ ठोककर पूछा, "यह तुमने कैसे सोचा?"

बच्ची ने कहा, "मैडम! यह मैंने अकेले नहीं सोचा।" उसने अपने साथियों की ओर इशारा करके कहा, "हम सब लोग सोच रहे थे कि यदि संख्या को बोलना नहीं है तो कैसे बताएँ। बात करते-करते यह आइडिया आ गया।" नंदा उस समूह के पास पहुँची, सभी बच्चों को शाबाशी दी।

कक्षा शान्त हुई तो नंदा ने पूछा, "क्या इसके अलावा कोई और तरीका है?" उसने देखा कि बहुत-से बच्चों ने हाथ उठा दिए थे। उसने बच्चों के एक ग्रुप से कहा, "तुम लोग कुछ बतलाओगे?"

बच्चों ने कहा, "मैडम! दस, दस और सात।"

"अरे वाह! क्या बात है। इनके लिए भी तालियाँ।" नंदा ने ज़ोर-से कहा।

पीछे से कुछ बच्चों ने कहा, "मैडम, हम भी बताएँगे।"

"हाँ, हाँ, बताओ।"

"दो बार दस और सात।"

"बहुत बढ़िया! बहुत ही बढ़िया। तालियाँ बजनी चाहिए।"

बच्चे खुशी और उत्साह से भरे हुए थे। उनकी कोशिशों को सराहना जो मिल रही थी। उनके चेहरे पर विश्वास झलक रहा था। उन्हें देखकर लग रहा था जैसे उन्होंने कोई बड़ा मैच जीत लिया है।

नंदा ने फिर पूछा, "किसी और के पास कोई दूसरा उत्तर है?" बच्चों ने कहा, "नहीं मैडम, हम भी ऐसा ही सोच रहे थे।"

"बहुत अच्छा! तुम लोगों ने जिस तरह इस समस्या का हल ढूँढ़ा, कुछ वैसा ही उस किसान ने भी शायद किया होगा। तुम सभी ने मिलकर बहुत बढ़िया काम किया है, बहुत ही बढ़िया।"

"लेकिन मेरे मन में एक सवाल है," यह कहकर नंदा चुप हो गई। सभी बच्चे उत्सुकता से उसकी ओर देखने लगे।

"जब मैं इस कहानी के बारे में सोच रही थी तो मेरे मन में एक प्रश्न उठा। प्रश्न यह था कि यदि उस किसान को दस तक की गिनती नहीं आती होती, मान लो वह केवल आठ तक ही गिनती जानता तो क्या वह पूरे अमरूद गिन पाता?"

सारे बच्चे एक बार फिर सोच में पड़ गए। नंदा ने कहा, "इसके लिए तुम अभी परेशान न हो। कल सोचकर आना फिर सब मिलकर इसका जवाब ढूँढ़ेंगे।"

***

दूसरे दिन जब नंदा अपनी कक्षा में पहुँची तो बच्चों ने उसे घेर लिया और चिल्लाने लगे, "हमने बना लिया, हमने बना लिया।"

"अच्छा ठीक है, ठीक है, बैठ जाओ। हाजिरी भरने दो फिर कल के सवाल पर बात करेंगे।"

"नहीं मैडम, पहले सुनिए, हाजिरी बाद में।"

"अच्छा बाबा ठीक है, लेकिन पहले बैठो तो।"

सारे बच्चे बैठ गए तो नंदा ने पूछा, "कितने बच्चों से बना?"

सभी बच्चों ने हाथ उठा दिए। सामने बैठे बच्चों ने कहा, "मैडम, आज हम लोग पहले बताएँगे, कल हमारी बारी सबके बाद आई थी।"

"अच्छा ठीक है, चलो तुम्हीं लोग बताओ।"

एक बच्चे ने कहा, "मैडम! वो किसान है न, पहले सब अमरूदों को एक तरफ रख देगा। उस ढेर में से आठ अमरूद निकालकर अलग ढेरी बनाएगा। फिर आठ अमरूद निकालकर दूसरी ढेरी बनाएगा। ऐसे ही आठ-आठ अमरूदों की ढेरी बनाता जाएगा। एक बार ऐसा होगा कि आठ अमरूद नहीं बचेंगे। उनको अलग से गिन लेगा। फिर वह बता सकेगा कि आठ-आठ अमरूद की इतनी ढेरियाँ और इतने अमरूद।"

नंदा चकित थी, संख्या पद्धति की इस संरचना को कोई बच्चा इतनी आसानी-से समझा देगा। वह भी एक अलग परिस्थिति में, यह बात उसकी कल्पना में नहीं आई थी। उसके मुँह से बस इतना ही निकला, "तुम सब तो कमाल करते हो, क्या बात है।" अपने आप उसके हाथों से तालियाँ बज गईं। सारे बच्चे तालियाँ बजाने लगे।

बच्चों को समस्याओं से जूझने दें

नंदा सोच रही थी हम बड़े लोग बच्चों को कितना छोटा करके आँकते हैं। हम पहले ही यह सोच लेते हैं कि बच्चे ये नहीं कर पाएँगे, बच्चे वो नहीं कर पाएँगे। यदि उन्हें सोचने और आपस में बातचीत करने के मौके दिए जाएँ तो उनकी सहजबुद्धि कितने रास्ते ढूँढ़ लेती है, कितने तर्क बुन लेती है, कितने सवाल करती है, कितने जवाब बना लेती है। आखिर क्यों न हो, ये हैं तो इन्सान ही न।

नंदा को इस विचार प्रवाह में बहना अच्छा लग रहा था, उसे लग रहा था एक शिक्षक के रूप में सवालों के जवाब खुद दे-देकर हम समस्याओं से जूझने की बच्चों की नैसर्गिक क्षमता को विकसित नहीं होने देते। ऐसा करके हमें लगता है कि हम उनकी मदद कर रहे हैं लेकिन हम उन्हें कुछ मायनों में कमज़ोर कर रहे होते हैं। उसे उस तितली की कहानी याद आ रही थी जो अपने कोकून से बाहर निकलने के लिए संघर्ष कर रही थी और एक बच्चे ने उसकी मदद करने के उद्देश्य से कोकून में बड़ा छेद बना दिया था। तितली बाहर तो निकल आई पर उसके पंख पूरी तरह विकसित नहीं हो पाए थे। उसने उड़ने की बहुत कोशिश की पर वह उड़ न पाई और आखिर मर गई, बेचारी!

"मैडम जी।" बच्चे उसे झिंझोड़ रहे थे। उसकी तन्द्रा टूटी। उसने अपने आप को सँभाला और विचार क्रम को तोड़ते हुए बच्चों से कहा, "सॉरी, तुम लोगों के उत्तर ने मुझे आश्चर्य में डाल दिया। अच्छा चलो बताओ, किसी के पास इससे अलग उत्तर है?"

"ऐसे ही हम भी गिनेंगे मैडम।"

"बहुत अच्छा।"

नंदा के दिमाग में नया प्रश्न आ रहा था कि यदि ढेरियों की संख्या आठ से ज़्यादा हुई तो इसे बच्चे कैसे गिनेंगे। फिर उसे लगा कि अभी इतनी ही बात की जाए। अभी जो कुछ हो पाया है, उसी विचार को और पक्का होने दूँ तो ज़्यादा अच्छा रहेगा। उसने बच्चों से कहा, "सुनो, सुनो, अभी इस बात को यहीं खत्म करते हैं। कल हम जिन बीजों को गिन रहे थे, उन्हीं पर कुछ और बात करते हैं। क्या किसी को याद है कि हमने कल कितने बीज गिने थे?"

"दस, दस और सात बीज।"

"दो बार दस और सात बीज," बच्चों के उत्तर आए।

"ठीक, अब ज़रा सोचो यदि हमारे पास गिनती में दस के बाद और नाम होते जैसे दो बार दस के लिए, तीन बार दस के लिए और इसके आगे भी, तो क्या होगा?" कोई उत्तर नहीं आया।

"अच्छा चलो, एक काम करते हैं। हम अपने मन से कुछ नाम बनाते हैं।" नंदा ने अपने दोनों हाथों की सभी उँगलियों को सामने दिखाते हुए कहा, "इतनी चीज़ों के लिए हमारे पास एक नाम है - दस। अब अगर इतनी-इतनी

चीज़ें दो बार हों यानी दस और दस हो जाएँ तो इनके लिए कोई नाम सोच लें। बोलो, क्या नाम दें?"

बच्चे थोड़ी देर इसे समझने की कोशिश करते रहे। फिर एक बच्ची ने उठकर धीरे-से कहा, "मैडम जी, दस और दस के लिए नाम है न, 'बीस'।"

"अरे हाँ, मैं भी कैसी भुलक्कड़ हूँ। तुमने अच्छा याद दिलाया। दस और दस को तो हम बीस कहते हैं न। गुड। अब तो अपना काम आसान हो गया। चलो, अब बताओ तीन बार दस को क्या कहेंगे?"

"तीस," कुछ बच्चों ने एक साथ कहा।

"अच्छा, चार दस को?"

"चालीस," सभी बच्चे ज़ोर-से चिल्लाए। अब उन्हें यह पैटर्न समझ में आने लगा था। नंदा और आगे पूछती, इसके पहले कई बच्चे कहने लगे, "पाँच दस को पचास, छह दस को साठ, सात दस को सत्तर..."

"अच्छा बस, बस! मैं जान गई कि तुम सबको ये नाम मालूम हैं। बहुत बढ़िया। आओ, हम सब मिलकर एक काम करें। मैं बोर्ड पर इन्हें लिखती हूँ। तुम सब लोग सोचकर उनके आगे संख्या का नाम लिखना।" यह कहकर नंदा ने बोर्ड पर बाईं ओर लिखा। उसने बच्चों को बारी-बारी से आने के लिए कहा। बच्चे क्रम से आते गए। उन्होंने संख्या के आगे उनका नाम लिखा। दो-तीन बच्चे थोड़े ठिठक रहे थे। वे ज़्यादा कुछ सोच पाते, उसके पहले ही अन्य बच्चे संख्या बोले देते। नंदा को लगा, अभी कुछ और अभ्यास कराने की ज़रूरत है। बोर्ड के पास बुलाने पर सभी बच्चों को चांस नहीं मिल पा रहा है। इसलिए उसने बच्चों से कहा, "अब अपनी-अपनी कॉपियों में ऐसे ही उन संख्याओं को लिखो जिन्हें तुम जान गए हो।"

बच्चे काम करने में मशगूल हो गए। कुछ बच्चे एक-दूसरे से पूछकर या तो जान रहे थे या अपनी समझ के प्रति आश्वस्त हो रहे थे। नंदा ने उन्हें आपस में बात करने से नहीं रोका। उसे हमेशा यह लगता है कि बच्चे आपस में बातें करके भी बहुत कुछ सीख सकते हैं। पाँच-सात मिनट बाद बच्चे अपनी कॉपियाँ लेकर उसके पास आने लगे। प्रायः सभी बच्चों ने बहुत हद तक सही किया था। शब्दों को लिखने में कहीं-कहीं मात्रा, वर्ण आदि की त्रुटियाँ थीं। नंदा ने सोचा, "इन शब्दों के हिज्जे बाद में सिखा दूँगी, अभी तो बच्चों को अपने ढंग से काम करने दूँ।"

खेल सवाल-जवाब का

उसने देखा, बच्चे बहुत मज़े-से काम कर रहे हैं। उसे लगा कि इस काम को थोड़े अलग ढंग से भी करके देखा जाना चाहिए। इसलिए उसने बच्चों से पूछा, "क्या हम लोग पूछने-बताने का खेल खेलें?" कक्षा में जो खेल नंदा करती थी, उसमें यह भी एक खेल था।

इस खेल में बच्चे ही सवाल करते और बच्चे ही जवाब देते थे।

नंदा ने जैसे ही पूछा, बच्चों के शोर से कक्षा गूँज गई।

"खेलेंगे, हाँ, हाँ, खेलेंगे।" देखते ही देखते कक्षा दो हिस्सों में बँट गई, टीम 'ए' और टीम 'बी'। नंदा ने पूछा, "आज खेल का नियम क्या होगा?" एक बच्ची ने कहा, "जब एक टीम दूसरी टीम से सवाल करेगी तो सवाल पूछने वाला यह भी तय करेगा कि जवाब कौन देगा।"

नंदा ने पूछा, "क्या ये बात सबको मंज़ूर है?"

सबने कहा, "हाँ, ठीक है।"

फिर बारी-बारी से हर टीम ने सवाल पूछना शुरू किया। सबसे पहले टीम 'ए' की नेहा ने पूछा, "तीन बार दस यानी कितना होगा, अंजली बताएगी।"

"तीस," टीम 'बी' की अंजली ने कहा।

अब अंजली ने पूछा, "नौ बार दस कितना होगा, अनवर बताएगा।" "नब्बे," अनवर ने उत्तर दिया और खेल चलता रहा। खेल के खत्म होने तक नंदा आश्वस्त हो चुकी थी कि सभी बच्चे यह समझ गए हैं कि दस, बीस, तीस में कितने-कितने दस शामिल हैं।

खाना खाने का समय हो गया था। उसने बच्चों से कहा, "आज बस इतना ही। कल फिर कोई नया खेल सोचेंगे, और हाँ, कल जब आओ तो कुछ चीज़ें ढूँढ़कर लाना, जैसे छोटे-छोटे तिनके, बजरी, गिट्टी के टुकड़े, कंकड़, चूड़ी के टुकड़े और ऐसी ही कुछ चीज़ें जो आसानी-से मिल जाएँ। ठीक है? अच्छा अब जाओ, अब तुम्हारे खाने की छुट्टी। जल्दी आना, आज तुम्हें एक मज़ेदार कहानी सुनाऊँगी।"

बच्चे हो-हो करते हुए कक्षा से बाहर निकल गए, जल्दी आने के लिए। खाने की छुट्टी के बाद जब बच्चे आए तो नंदा ने उन्हें 'सिंदबाद' की कहानी सुनाई। बच्चों ने बहुत मन से कहानी सुनी। थोड़ी देर में छुट्टी हो गई। नंदा आकर स्टाफ रूम में बैठी। उसका दिमाग कल की कक्षा की योजना बनाने में लगा हुआ था। थोड़ी देर बाद उसने जो कुछ सोचा था वो सब अपनी डायरी में लिख लिया।

सुधीर श्रीवास्तव: सेवानिवृत्त सहायक प्राध्यापक हैं। राज्य शैक्षिक अनुसन्धान एवं प्रशिक्षण परिषद, रायपुर, छत्तीसगढ़ में सभी विषयों की पाठ्यपुस्तक लेखन समिति के समन्वयक रहे हैं। गणित विषय में शोध किया है तथा गणित के साथ गहरा लगाव है। बच्चों के लिए प्रकाशित पत्रिकाएँ *किलोल* व *बालमित्र* के सम्पादक रहे हैं।

सभी चित्र: हीरा धुर्वे: भोपाल की गंगा नगर बस्ती में रहते हैं। चित्रकला में गहरी रुचि। साथ ही 'अदर थिएटर' रंगमंच समूह से जुड़े हुए हैं।

सूरज के दैत्य

सैम मॅक्ब्रैट्नी

दैत्यों को लेकर मैट्ट की उलझन उसके दादाजी के घर पर सोमवार की एक दुपहरी में शुरू हुई थी।

स्कूल से घर लौटते हुए वह अक्सर दादाजी से मिलने चले जाया करता। अक्सर वे उसे उस कमरे में अकेले बैठे मिलते, जिसमें एक खिड़की रहती थी; वे या तो अपना पाइप पीते मिलते या कभी अपने कम्प्यूटर को थपथपाते, लेकिन ज़्यादा बार, बस यूँ ही अपने खयालों में गुम-सुम मिलते। मैट्ट कुछ समझ न पाता कि वे क्या सोच रहे हैं; अब किसी के भेजे में क्या कुछ चल रहा है, यह भला कोई कैसे जान सकता है। माँ मानतीं कि कभी-कभार वे दादी के बारे में सोचा करते हैं, जो पाँच या छह बरस पहले गुज़र चुकी थीं। बरसों पहले।

मैट्ट के आने पर, दादा सबसे पहले उसके लिए एक बड़ा-सा सैंडविच बनाते। इसके लिए वे एक पूरा केला लेते या पके हैम के तीन या चार स्लाइस या मुलायम मीठी खजूरों का आधा डिब्बा इस्तेमाल में लाते। अक्सर, ब्रेड के स्लाइस बड़े करीने से त्रिभुजाकार कटे होते, लेकिन दादाजी ब्रेड की बाहरी सख्त परत अलग कर देने में यकीन नहीं रखते थे। कहते, इसे चबाना तुम्हारे लिए अच्छा है।

सोमवार की उस दुपहरी किचन टेबल के नीचे रेंगते समय मैट्ट के सामने दादाजी के खाली वॉकिंग बूट्स आन पड़े। वे इतने बड़े थे कि मैट्ट को समझ ही नहीं आया कि उसका बित्ता-सा पैर भला कभी किसी दिन इत्ती बड़ी इस चीज़ में फिट बैठेगा भी! उन जूतों को देखने भर से ही वह खुद को बहुत छोटा महसूस करने लगा। किसी दैत्य/राक्षस के जूते बिलकुल ऐसे ही होते होंगे, उसने सोचा, और तो और, और बड़े। एक दैत्य का पाँव, एक घर जितना बड़ा हो सकता है। यूँ तो वो एक फुटबॉल मैदान से भी बड़ा हो सकता है।

बस तभी से उसने दैत्यों के बारे में सोचना शुरू कर दिया था। असल में वे कितने असल होते होंगे? दादाजी के वहाँ से घर लौटते वक्त रास्ते भर वह यही सोचता रहा। क्या दैत्य वाकई होते हैं, जैसे कि ... पाण्डा? वह नहीं जानता था। उसने तो जो भी दैत्य देखे थे, टीवी पर ही देखे थे या किताबों में, लेकिन यह बात तो पाण्डाओं के बारे में भी कही जा सकती है। और अगर वह खुद बहुत ज़्यादा न बढ़े और छोटा ही रहा आए दुनिया में तो?

इस सबके बावजूद कुछ न बिगड़ता, अगर उसने रात में वह बुरा सपना न देखा होता जिसने उसे डरा दिया था। उस सपने में, दो दानव एक खुले मैदान में आपस में लड़ने के लिए एक-दूसरे की तरफ बढ़े चले आ रहे थे। उनके पाँवों की धम्मक-धम्मक से धरती डोले जा रही थी। उनके पाँव बोरों में बँधे हुए थे, और उनके टखनों पर रस्सियाँ बँधी थीं। वह सब उसे एकदम साफ-साफ दिख रहा था! उन दो घिनौने चेहरों की एक-एक झुर्री वह देख पा रहा था। यही नहीं, उसे उनकी दाढ़ियों का अदरकी रंग भी दिख रहा था। दोनों का डील-डौल इतना ऊँचा था कि वहाँ उमड़ते-घुमड़ते बादलों तक में जब-तब वे गुम हो जाते, और उनमें से वे बर्फीले तीर निकाल लाते; और फिर तो वे दोनों एक-दूसरे पर तब तक वे तीर चलाते रहे, जब तक मैट्ट जग न गया, अपनी चादर पकड़े-पकड़े, अजीब-सी सुबकियाँ लेते लेते। तिस पर तड़ाक से उसकी माँ कमरे में आईं, और बोलीं, "अपनी सूरत तो देखो, आईने में!"

मैट्ट ने हल्के-हल्के साँसें छोड़ और ले, अपने चेहरे पर मुस्कान लाने

की कोशिश की। उसने माँ को दैत्यों को लेकर अपनी उस छोटी-सी उलझन के बारे में बताया। क्या वे सचमुच में होते हैं? एक पाण्डा की तुलना में एक दैत्य भला कितना कम असली होता है? उसने तो न तो पाण्डा देखा था, न ही कोई दैत्य!

"पाण्डा की तुलना में?" उसे भींचते हुए, माँ ने दोहराया। "मेरे प्यारे बच्चे, मैं नहीं जानती तुम यह क्या बकबक कर रहे हो। ओफ्फो! तुम बड़ी जल्दी उन चीज़ों से डर जाते हो, जो सच नहीं होतीं।"

फिर मैं उन्हें इतना साफ-साफ देख कैसे पाता हूँ, भला? और उन बर्फानी तीरों का क्या?

ठण्डी साँस लेते वक्त उसकी माँ ने अपना सिर हिलाते हुए कहा, "अब तो रात भर तुम्हारे कमरे की लाइट जलती रहेगी। असल में, बर्फों के तीर कोई नहीं बनाता..."

अगले दिन स्कूल में, मैट्ट ने अपने दोस्तों, डॅनिएल और ह्यू से पूछा कि क्या वे लोग दैत्यों से थोड़ा भी डरते हैं। कद में अच्छी-खासी लम्बी डॅनिएल ने कहा कि वह तो नहीं डरती। "हो सकता है कि कोई सचमुच का दैत्य देखने पर मैं डर जाऊँ," ह्यू बोला। "मैंने तो दो-दो देखे हैं," मैट्ट ने उन्हें बताया। "वे दोनों एक-दूसरे पर तीर बरसा रहे थे - तीर, वो भी बर्फ के बने। यह एक सपना था।"

"सपने सच नहीं होते!" डॅनिएल बोली; ह्यू ने भी हौले-से सिर हिलाया, मानो वह इस बात की हामी भर रहा हो कि सपने वाला दैत्य सच्ची-मुच्ची वाला तो नहीं ही माना जाएगा।

उस मंगल की दोपहर मैट्ट फिर से अपने दादा के घर गया, और इस बार के सैंडविच, सार्डीन सैंडविच थे। दादाजी एक गोल पीठ वाली कुर्सी पर बैठे खा रहे थे; उस कुर्सी को कप्तानी कुर्सी कहा जाता था। कुछ देर उन दोनों के बीच सार्डीनों की बातें होती रहीं, अब चूँकि सार्डीनें मछलियाँ होती हैं, दादाजी ने उस 'सामन दानव' की बात छेड़ी जिसे उन्होंने एक बार ली नदी में लगभग पकड़ ही लिया था समझो; वे उसे जकड़ नहीं पाए, कारण कि ऐन मौके पर वो मछला उनके काँटे से छूट गया और साफ बच निकला।

"अगर उस वक्त मेरे पास जाल होता," दादाजी बोले, "तो मैं उसे धर लेता अन्दर।"

तिस पर मैट्ट ने उनसे पूछा, "वो मछली जिसे आप धर न सके उस दिन, क्या वह आज भी ज़िन्दा होगी?"

"नहीं, मुझे नहीं लगता। उन दिनों मैं जवान हुआ करता था। और देखो, सामन मछली बहुत कम ही जी पाती है, बेचारी।"

कुछ देर की चुप्पी के बाद, मैट्ट बोला, "मम्मी कहती है मैं बड़ी आसानी-से डर जाता हूँ।"

"अच्छा?"

मैट्ट ने तब उन्हें दैत्यों के बारे में बताया। अपने सपने के बारे में बताया, और कभी-कभी ज़िन्दगी भर छोटा रह जाने के अपने उस अजीब-से डर के बारे में भी बताया। उसने उन बर्फाने तीरों का भी ज़िक्र किया। दादाजी अबोले सुनते रहे।

"क्या आपको किसी चीज़ से डर लगता है?"

"मुझे? लगता तो है।"

किसका? मैट्ट विस्मित हो सोचता रहा। बुढ़ापे का, हो सकता है। यह तो वह खुद ही देख सकता था कि उसके दादा अब जवान नहीं रहे, और थोड़ी देर को वह सोचता रहा, कितना अजीब है न लोगों के हाथ से समय का यूँ फिसलना, जैसे उस एग-टाइमर के अन्दर, रेत का फिसलना।

"क्या आप दादी की तरह मर जाने से डरते हैं?"

दादाजी खी-खी करके हँस पड़े। मैट्ट ने सोचा, लो इसमें हँसने की क्या बात हुई भला। "मुझे इसकी कोई खास चिन्ता नहीं होती। खैर, मैं तो यह सोचता ही नहीं।"

"फिर क्या?"

"समझाना आसान नहीं। देखो, हम अपनी ज़िन्दगी में अलग-अलग समय पर अलग-अलग चीज़ों से डरते हैं।"

"जैसे?" मैट्ट ने पूछा।

"कोई भी चीज़।"

"आपका मतलब पैसे से है?"

"नहीं, ज़रूरी नहीं कि वह पैसा ही हो; छोटी-छोटी चीज़ें! अब अगर तुम्हें यह पता होता कि मुझे इस वक्त किस चीज़ से डर लग रहा है, तो तुम बोलते लो, यह भी कोई डरने की बात हुई भला!"

"लेकिन ऐसी कौन-सी चीज़ है?" मैट्ट भी छोड़ने वालों में नहीं था।

दादाजी गुर्राते हुए कप्तानी कुर्सी में इधर-उधर डोले ताकि वे एकदम से तनकर बैठें। "तो चलो, बताता हूँ तुम्हें कि वह कौन-सी चीज़ है जो मुझे इस उम्र में डराती है। फूल खरीदना। लेकिन यह एक सीक्रेट है, तुम्हारे-मेरे बीच। मैं अपनी एक दोस्त के लिए कुछ गुलाब खरीदना चाहता हूँ, पर यह आसान नहीं है। समझे!"

"मुझे नहीं समझ आता कि फूल खरीदने में ऐसी डरने वाली बात भला क्या है?"

"हो सकता है वह उन्हें पसन्द न करे। फिर तो मैं एक मूर्ख जैसा महसूस करूँगा, एक खूसट बुड्ढा।"

"वो कैसे?"

"इसे समझाना मुश्किल है," अपनी आवाज़ की लौ बढ़ाते हुए, दादा बोले। "मैंने तुमसे कहा था, कहा था न, कि डर एक अजीब-सी बला है और तुम नहीं समझोगे? चलो कुछ और बात करें।" यह कहकर उन्होंने मैट्ट की तरफ एक उंगली उठाई। "याद रहे कि हर किसी को किसी-न-किसी चीज़ से डर लगता है - तुम्हारा काम है, इस डर को अपने ऊपर हावी न होने देना, बस। अब आओ, डिशवॉशर भरने का टाइम है यह।" दादाजी इसे 'डिशवॉशर

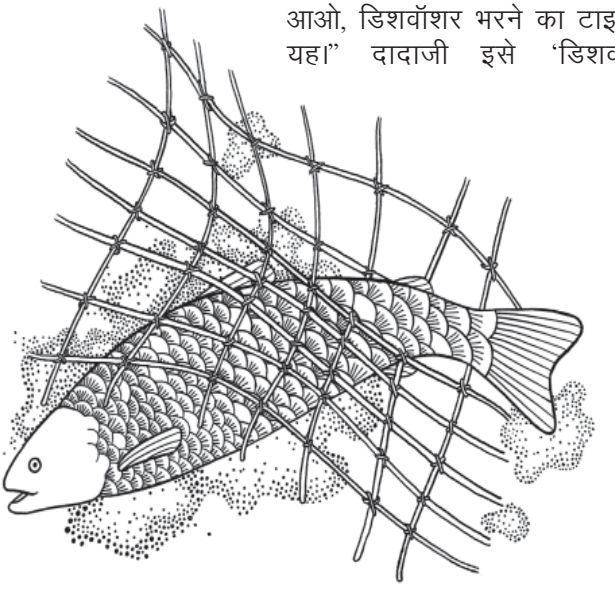

भरना' कहते, लेकिन उनके पास ले दे के इतने कम बर्तन होते कि डिशवॉशर क्या खाक भरता!

और मैट्ट जब घर जाने की रवानगी डाल ही रहा था कि उसके दादाजी ने खींसें निपोरते हुए कहा, "मालूम है, आयरलैंड पर भी दैत्यों का हमला होने वाला है।"

"आपको कैसे पता?"

"मैंने देखा है उन्हें।"

"क्या?"

"ओ, हाँ। इन आँखों से, देखे हैं मैंने, सूरज के दैत्य, और यह भी देखा है कि कितने तगड़े होते हैं वे। इतने तगड़े कि मुझसे भी पाँच, छह, दस गुने लम्बे।" वे नीचे झुके और मानो फुसफुसाकर बोले, "तुम भी तो देख चुके हो उन्हें।"

"मैंने कहाँ देखा है उन्हें, दादाजी।"

"मैं कहता हूँ तुम्हें - कल दोपहर में आओ, फिर मैं तुम्हें उनके बारे में बताऊँगा। ठीक?"

"ओके, दादाजी।"

उस रात मैट्ट के डैड ने अपने कन्धे पर बिठा उसे सीढ़ियाँ चढ़ाईं, और उसे अच्छा-खासा ऊपर उछाल बिस्तर पर दे पटका, और फिर उसे बिस्तर के अन्दर अच्छे से ठूँस दिया। "आज की रात, ऑन या ऑफ?" बत्ती के स्विच पर उंगली रखते हुए उन्होंने पूछा।

"प्लीज़ ऑन ही रहने दें। डैडी, दादाजी कहते हैं कि उन्होंने दैत्य देखे हैं।"

"उन्होंने देखे हैं? मैं तो कहूँगा कि तुम्हारे दादाजी ने उतने ही भूत देखे हैं, जितने कि हम बाकियों ने।"

"भूत नहीं, दैत्य, राक्षस। सूरज के दैत्य। वे हम इन्सानों से बीस गुने बड़े हैं, डैड, वे सचमुच बहुत बड़े होते हैं। आपने उन्हें कभी नहीं देखा?"

"न ही मैंने देखे हैं और न ही उनने। भूत, प्रेत, दैत्य, सब-के-सब झूठ-मूठ हैं, उनमें से कुछ भी सच्चा नहीं, न पिशाच और न ही कोई ज़ॉम्बी, तोओ, जाओ सोओ!"

मैट्ट के दिमाग ने कहा कि शायद उसके डैडी सही हैं - किसी कारण से ऐसे मनगढ़न्त किस्सों की भरमार हो चली है जिनका सच्चाई से कोई वास्ता ही नहीं है, और दैत्य भी उन्हीं किस्सों की सन्तानें हैं। फिर भी उनके वे बर्फानी तीर उसे चुभते रहे।

वे भला आए किधर से? अपने जीवन भर, उसने ऐसी चीज़ों के बारे में कुछ नहीं सुना था, फिर भला उसके सपनों में वे कहाँ से चले आए?

यही नहीं, वह इस गुंताड़े में भी रहा आया कि ये सूरज के दैत्य भला क्या बला हो सकते हैं ...

बुधवार को जब मैट्ट अपने दादाजी के घर पहुँचा तो वहाँ कोई और भी था, ओह! थीं - एक महिला मेहमान। वह और दादाजी सुनहरी किनार वाली छोटी-छोटी प्यालियों से

चाय सुड़क रहे थे। मेज़ पर एक बढ़िया हरे रंग का कपड़ा बिछा था, और उस कपड़े पर तीन सतहों वाली एक चीज़ रखी थी - सबसे ऊपर की प्लेट, पाव रोटियों के लिए, बीच की प्लेट पर छोटी ब्रेड, और सबसे नीचे, एक बड़ी प्लेट, सैंडविचों के लिए। सैंडविच जो थे तिकोनों में काटे जा चुके थे, लेकिन, मैट्ट ने देखा, अरे! इनकी तो परतें ही गायब हैं।

"मिसेज़ कनिन्घम, ये हैं मेरे पोते, मैट्ट। मिसेज़ कनिन्घम से हेलो कहो, मैट्ट।"

मैट्ट ने हेलो कहा, और मिसेज़ कनिन्घम ने भी हेलो किया। उस कमरे में वह काफी खुश-खुश और चमकदार दिख रही थीं, शायद इसलिए कि उनके कपड़े, उनके होंठों की तरह लाल सुर्ख थे।

"तुमसे मिलकर बहुत अच्छा लगा, मैट्ट," वे बोलीं। "मैं तुम्हारे दादा की दोस्त हूँ।"

फिर कुछ देर तो मिसेज़ कनिन्घम उससे यह सुनती रहीं कि मैट्ट ने आज स्कूल में क्या-क्या किया; उसके बाद वे दादाजी से अगले शनिवार को चर्च हॉल में लगने वाले जंबल सेल (दान आदि के लिए पुराने सामान की बिक्री) के बारे में बात करने लगीं - क्या उनके पास काफी चीज़ें होंगी, क्या वे चीज़ें किसी काम की भी होंगी और उन चीज़ों के दाम वे क्या रखेंगे?

दादाजी का अन्दाज़ ही आज कुछ निराला था। आज उनकी बतियों के फूल खूब झर रहे थे, और वे, और दिनों से कहीं ज़्यादा हँस रहे थे। वो तो कुछ देर बाद जाकर ही, मैट्ट को सम्पट्ट पड़ी कि मिसेज़ कनिन्घम अभी तो न टलने वाली, सो बेहतर है अपन ही खसक लें यहाँ से!

"मैं कल आऊँगा दादाजी, और आपसे दैत्यों के बारे में सुनूँगा।" इधर मैट्ट यह कहकर चलता बना, उधर मिसेज़ कनिन्घम की भौंहें तनीं।

"दैत्य?" वह ऊँचे सुर में यूँ बोलीं, मानो हक्का-बक्का हों। जाते हुए मैट्ट के कानों में उन दोनों की हँसियाँ गूंज रही थीं।

उस रात का होमवर्क जल्दी निपट गया था, सो मैट्ट को आते शनिवार को होने वाली चर्च सेल के लिए चीज़ें कबाड़ने में अपनी माँ का हाथ बँटाने का समय मिल गया। उसे कुछ अच्छी किताबें मिलीं जो शायद बच्चों को पसन्द आएँ, और हाँ, कुछ ऐसे खिलौने भी जिनसे वह अब न खेलता था।

"इन्हें चलाने के लिए बस कुछ बैटरियाँ ही लगेंगी।" वह बोला

"मैं बैटरियाँ नहीं खरीदने वाली, मैट्ट," माँ बोलीं। "तुम्हारे दादा को उनकी ज़रूरत पड़ेगी तो वे बैटरियाँ खरीद लेंगे, यह सब उनके लिए है।"

"और मिसेज़ कनिन्घम भी," मैट्ट बोला। यह सुन उसकी माँ ने सहसा

उस काले वाले प्लास्टिक बैग में चीज़ों को भरना रोक दिया। "क्या... क्या... क्या...? ज़रा फिर से कहो तो। मिसेज़ कनिन्घम को तुम भला कैसे जानते हो?"

"मैं उनसे दादाजी के घर पर मिला, जब वे वहाँ चाय पी रही थीं। वे उन्हें जिम कहकर बुलाती हैं।"

अब तो उसकी माँ अपनी एड़ियों पर टिककर बैठ गईं; इसे तो ध्यान से सुनना होगा। "ईथल कनिन्घम तुम्हारे दादाजी के यहाँ, चाय पी रही थीं?"

"उन खूबसूरत नन्हे-नन्हे प्यालों में जिन्हें वे उस कैबिनेट में प्यार-से सजाकर रखते हैं। वे दादाजी की दोस्त हैं।"

"वो तो मैं जानती हूँ," कुछ तिखाई में उसकी माँ ने कहा।

"मम्मी, दादाजी अगर कुछ गुलाब खरीदेंगे तो वे बूढ़े बुद्धू क्यों लगेंगे?"

"गुलाब के फूल?"

थोड़ी देर तक तो मैट्ट को लगा कि अब उसकी माँ कुछ और न कहेंगी, चुप रहेंगी। उनकी नाक की त्योरी कुछ ज़्यादा ही चढ़ आई थी, जो अक्सर तब चढ़ती, जब वे कुछ ज़्यादा ही सोचतीं। या फिर गुस्सा होतीं। हो सकता है उन्हें मिसेज़ कनिन्घम से दादाजी की दोस्ती न

पसन्द हो। यह बात अलग है कि मैट्ट सोचता हो, क्यों नहीं।

"लेकिन वे यह क्यों बोले कि वे किसी के लिए गुलाब खरीदने जा रहे हैं?"

"नहीं, वे बोले कि अगर मैं उनकी उम्र का होता तो यह वह चीज़ है जिसे करने में मुझे वाकई डर लगता। बल्कि, वे फूल खरीदने की बजाय किसी दैत्य से मिलना पसन्द करते।"

"हाँ, वे सही हैं, तुम जिसके लिए चाहो, उसके लिए फूल नहीं खरीद सकते, सो फूल खरीदने के बाद बौड़म लगना मुमकिन तो है।" यह कहकर उसकी माँ ने अपनी आँखें मूंद लीं, और बुदबुदाईं, "अब और क्या ...?"

गुरुवार के दिन, मैट्ट की टीचर ने एक कहानी पढ़कर सुनाई, इत्तफाक से, कहानी किसी दैत्य के बारे में थी। वह दैत्य ऊँचे तन्हा पहाड़ों पर रहता था और कोई सौ बरसों में एक बार उसकी नींद खुलती थी। सो, बहुत कम लोगों को उसकी जानकारी थी। कहानी खत्म होने के बाद, मैट्ट ने अपनी टीचर से पूछा कि क्या उन्होंने कभी किसी दैत्य को अपनी आँखों से देखा है। वे बोलीं, "नहीं।"

"मेरे दादा ने लेकिन दैत्य देखे हैं, मिस मॅक्क्रैकन।"

"ओह! अभी हाल की बात है?"

"हाँ, मुझे ऐसा लगता है, वे कहते हैं आयरलैंड उनसे भरा पड़ा है, और जल्द ही वे मुझे भी दिखाने वाले हैं।"

थोड़ा ठहरकर, मिस मॅक्क्रैकन मुस्करा दीं। "जब तुम देख चुको तो हमें बताना न भूलना।" इसके बाद उन्होंने सबसे अपनी-अपनी पाठ्य-पुस्तकें खोल लेने के लिए कहा, इस प्रकार दैत्य पाठ समाप्त हुआ।

स्कूल-बाद, घर-वापसी में, डॅनिएल बोली कि मिस मॅक्क्रैकन को शायद मैट्ट के दादाजी पागल लगते हैं। "क्या ह्यू और मैं तुम्हारे दादाजी से मिल सकते हैं?" उसने थोड़ा होशियारी से पूछा।

तिस पर ह्यू बोला, "फिर हम लोगों से बोल सकेंगे कि हम ऐसे आदमी को जानते हैं जिसने दैत्य देखे हैं।"

"नहीं," मैट्ट बोला। "और वे पागल नहीं हैं।"

मैट्ट जब दादाजी के घर पहुँचा तो उसने पाया कि वहाँ सबकुछ नॉर्मल था, पहले जैसा - न कोई हरा कपड़ा था, न ही वे फैशनी कप, न मिसेज़ कनिन्घम। दादाजी ने उसके लिए चीज़ सैंडविच बनाए थे, जो चौकोर कटे थे और उन पर उनकी परतें बदस्तूर सजी थीं, चबाने के लिए, सब-के-सब उस ऊँचे गिलास में से गिरते दूध में नहाए-धुले।

सैंडविचें खा चुकने के बाद मैट्ट ने पूछा, "दादाजान, क्या अब आप मुझे सूरज के दैत्यों के बारे में बताएँगे?"

"बल्कि उससे भी बेहतर। मुझे लगता है कि उनके बारे में कुछ

बताने की बजाय मैं तुम्हें उनके दर्शन करा सकता हूँ। ज़रा पीछे की तरफ आओ।"

दिन उजला और हवाई था। खटका ताले के दरवाज़े से मैट्ट और उसके दादा ने बगिया के पार उन गॅराजों की चूना-पुती दीवारों को देखा। बगीचे में कोई ज़्यादा उगाहट न थी, क्योंकि अभी तो वसन्त की शुरुआत ही थी और कभी-कभार तो रात के अँधेरे में कुम्हलाने वाला पाला भी दबे पाँव आ पड़ता था। रसभरी की बेंतें ठण्ठ डण्डियों की भाँति तनीं थीं। अभी तो यकीन न आता था कि गर्मियाँ आएँगीं और एक बार फिर उन्हें रसीले फलों से भर-भर जाएँगी।

"वे रहे वहाँ," अपना एक हाथ लहराते हुए दादाजी बोले, "सूरज के दैत्य। इक तेरा, इक मेरा, हम दोनों का एक-एक। उनकी लम्बाई तो देखो!"

लेकिन मैट्ट को तो कुछ दिखाई ही नहीं दिया, अपने और उन परले गॅराजों के बीच। फिर उसने देखा एक बड़े काले सिर का हिलना-डुलना - सिर खुद उसका - उस दूर की सफेद दीवार पर, और समझ तो खैर वह गया ही।

"आपका मतलब है वे परछाइयाँ," वह चिल्लाया। "यह तो सरासर धोखेबाज़ी है!"

"यह धोखेबाज़ी नहीं है। तुम दैत्य देख सकते हो, और वो भी सूरज से बने। तुम मना नहीं कर सकते कि मैंने तुम्हें सूरज के दैत्य नहीं दिखाए, अब बोलो?"

ये तो बिलकुल भी डरावने दैत्य नहीं हैं, मैट्ट ने सोचा। अब वह सोचने लगा कि क्या यह तरकीब मिस मॅक्क्रैकन पर चलेगी। "समझ जाओ," उसके दादाजी कह रहे थे, "सभी दैत्य एक-सरीखे होते हैं। यहाँ अन्दर झाँको।" मैटट के माथे को

थपथपाते हुए वे बोले। "इसी के अन्दर तो रहते हैं, सारे।"

"यानी आप यह कह रहे हैं कि वे असली नहीं होते।"

"एक भी नहीं। न कभी थे, न कभी होंगे। हाँ, यह बात अलग है कि वे कहीं दूर गैब में किसी और ग्रह पर रहते हों।"

"लेकिन दादाजी, बर्फ से बने उन तीरों का क्या?"

"वे सब तुम्हारे इस सिर में बनते हैं। वैसे आइडिया बड़ा ज़ोरदार है – 'बर्फ के तीर'। वाह!"

उस वक्त मैट्ट के दद्दू लैच वाले दरवाज़े के वहीं खड़े थे, धूप में सूखते अपने कपड़ों के उस चरखी-झूले को हवा में हौले-हौले घूमता देखते हुए - कमीज़ों के पल्लों और उनकी परछाइयों को देखते हुए। आज उनका मन बहुत हल्का-हल्का-सा लगता था, वे गुनगुना जो रहे थे।

"तुम्हें पता है आज सुबह मैंने क्या किया? तुम बूझ ही नहीं सकते जो मैंने किया। आज मैंने कुछ खरीदा।"

"आज आपने फूल खरीदे?" मैट्ट ने पूछा।

मैट्ट का अन्दाज़ा सही था। दादाजी ने हैरत भरी निगाहों से उसे देखा, और फिर वे मुस्करा दिए।

"बच्चू, तुम बड़े उस्ताद निकले!" वे बोले, और चपाक-से मैट्ट को ऊपर उठा लिया उनने, और फिर हवा में उसे यूँ ही लहराते रहे।

सैम मॅक्ब्रैट्नी: उत्तरी आयरलैंड की ऍण्ट्रिम काउंटी में पले-बढ़े और आज भी वहीं रहते और काम करते हैं। अध्यापक रह चुके सैम, पिछले तीस सालों से भी ज़्यादा समय से लिखते रहे हैं। उन्होंने तमाम उम्र के बच्चों के लिए किताबें लिखीं हैं और उनका काम सारी दुनिया में जाना जाता है। उनके अन्तर्राष्ट्रीय पुरस्कारों में ऍबी (अमेरिका), सिल्वरेनग्रिफल (हॉलैंड) और बिस्टो (आयरलैंड) शामिल हैं। उनकी चित्र-पुस्तक *गेस हाउ मच आइ लव यू* समूचे बाल-साहित्य की सबसे ज़्यादा कामयाब किताबों में शुमार है।

सैम और उनकी पत्नी अपने बच्चों और उनके भी बच्चों, तिस पर, उन सबके कछुए, मॅबल के साथ रहते हैं, जिसकी साइज़ एक डिनर प्लेट जितनी है।

अँग्रेज़ी से अनुवाद: मनोहर नोतानी: शिक्षा से स्नातकोत्तर इंजीनियर। पिछले कई वर्षों से अनुवाद व सम्पादन उद्यम से स्वतंत्र रूप से जुड़े हैं। भोपाल में रहते हैं।

सभी चित्र: राही डे रॉय: चित्रकार हैं। महाराजा सयाजीराव यूनिवर्सिटी ऑफ बरोडा, वडोदरा, गुजरात से फाइन आर्ट्स (चित्रकारी) में स्नातक।

सवालीराम

सवाल: लौकी की बेल में सफेद फूल आते हैं, तो लौकी की बेल या फल हरे रंग के क्यों होते हैं? ऐसे ही भटे का पौधा तो हरे रंग का होता है पर उसके फूल परपल और भटे का रंग गहरा बैंगनी क्यों होता है?

- मानवी मुले, कक्षा 1, सेमिरिटन स्कूल, होशंगाबाद

जवाब की कोशिश

यह बहुत मज़ेदार बात है और शायद ही कोई यह देख पाए कि पेड़-पौधों में ढेर सारे रंग पाए जाते हैं। वैसे मोटे तौर पर देखा जाए तो पेड़-पौधे हरे होते हैं - इसीलिए तो हम हरियाली की बात करते हैं। लेकिन यह बात ज़्यादातर पत्तों पर ही लागू होती है। जब बात फूलों और फलों की आती है तो दुनिया रंग-बिरंगी हो जाती है (वैसे कई पेड़ों में पत्तियाँ भी रंग-बिरंगी होती हैं)। तो सवाल वाजिब है कि जब पत्तियाँ हरी होती हैं तो फूलों और फलों में लाल, पीले, नारंगी, कत्थई, नीले रंग कहाँ से आ जाते हैं और क्यों।

तो चलो, समझने की कोशिश करते हैं। यह तो जानी-मानी बात है कि सूरज के प्रकाश में कई रंग उपस्थित होते हैं। इन सबका मिल-जुलकर असर यह होता है कि हमें यह प्रकाश सफेद दिखता है। लेकिन इन रंगों को अलग-अलग किया जा सकता है। इन्हें अलग-अलग करने के कई तरीके हैं। इन्द्रधनुष एक तरीका है।

रंजक पदार्थ और उनका विवरण

सबसे पहली बात तो यह है कि पौधों में पाए जाने वाले अधिकांश रंग रासायनिक पदार्थों की उपस्थिति की वजह से होते हैं। ये ऐसे पदार्थ होते हैं जो सूरज की रोशनी में से कुछ रंगों को सोख लेते हैं और बाकी को या तो परावर्तित कर देते हैं या आर-पार निकल जाने देते हैं। तब वह वस्तु हमें उस रंग की दिखाई पड़ती है जो वह नहीं सोखती। ऐसे पदार्थों को रंजक कहते हैं। जैसे पत्तियों में एक पदार्थ क्लोरोफिल पाया जाता है। यह हरे और थोड़े नीले को छोड़कर बाकी सारे रंग सोख लेता है। तो पत्तियाँ हरी नज़र आती हैं। वैसे क्लोरोफिल भी कई प्रकार का होता है और ये अलग-अलग प्रकार, अलग-अलग रंगों के प्रकाश को सोखते हैं।

पौधों में मुख्यत: चार प्रकार के रंजक पाए जाते हैं। इनके नाम में जा सकते हैं, लेकिन मुख्य बात यह है कि इन सबकी रासायनिक संरचना अलग-अलग होती है और ये अलग-

अलग रंगों के प्रकाश को सोख लेते हैं। इनमें से कुछ पदार्थ पत्तियों में भी पाए जाते हैं लेकिन क्लोरोफिल की उपस्थिति में नज़र नहीं आते। पतझड़ के समय जब क्लोरोफिल का विघटन हो जाता है तो हमें लाल-पीली पत्तियाँ दिखने लगती हैं।

रंजक तय करने वाले कारक

अब आते हैं वास्तविक सवाल पर। किसी भी पौधे में यह तय करने वाले कारक होते हैं कि उसमें कौन-कौन-से रंजक बनेंगे। इन्हें जीन कहते हैं। पूरे पौधे की हर कोशिका में एक-जैसे जीन होते हैं। तो हर कोशिका को (यानी हर अंग को) ये सारे रंग बनाना आता है। लेकिन कहाँ कौन-सा रंग बनेगा, यह उस कोशिका की स्थिति पर निर्भर रहता है। जैसे जड़ें कभी क्लोरोफिल नहीं बनातीं।

जब पौधे के किसी स्थान पर फूल बनने लगता है तो वहाँ की परिस्थिति बदल जाती है। उस स्थान की कोशिकाओं के तेवर ही कुछ और हो जाते हैं। फिर फल की बारी आती है। फल बनने की शुरुआत तब होती है जब किसी फूल के अण्डों का मिलन परागकणों से होता है। इस क्रिया को निषेचन कहते हैं। निषेचन के कारण परिस्थिति फिर बदल जाती है। जो जीन पहले निष्क्रिय पड़े थे, वे अब सक्रिय होकर काम करने लगते हैं। नए-नए रसायन बनने लगते हैं और रंग-रूप बदल जाता है।

तो जीन्स और कोशिका का पर्यावरण मिलकर तय करते हैं कि किसी कोशिका में कौन-से पदार्थ बनेंगे। रंजकों का निर्माण भी इसी से तय होता है। लेकिन फलों में एक बात और होती है। ये जो रंजक होते हैं, इनका रंग भी आसपास के पर्यावरण से प्रभावित होता है। यदि वातावरण अम्लीय है तो वही रंजक कुछ अलग रंग दिखाता है लेकिन वातावरण उदासीन या क्षारीय हो जाए, तो उसका रंग बदल जाता है। इसी प्रकार से शकर (यानी साधारण शकर, ग्लूकोज़, फ्रक्टोज़ वगैरह) भी रंजक के रंग को प्रभावित करती है। जब फल पकने लगता है और उसमें शकर की मात्रा बढ़ने लगती है तो वह रंजकों से जुड़कर उनका रंग बदल देती है।

अब इसी सवाल का दूसरा पहलू देखो। इतना तो तुम समझ ही गई होगी कि ये सारे रंग वगैरह बनाने में पौधे का काफी खर्चा होता होगा। खर्चा यानी इतने सारे रसायनों को अदल-बदलकर नए रसायन बनाने के लिए जो क्रियाएँ होंगी, उनमें ऊर्जा तो लगेगी न! क्लोरोफिल बनाया तो खर्चा तो हुआ लेकिन उसकी मदद से प्रकाश संश्लेषण की क्रिया करके फायदा भी तो मिला। तो फूलों, फलों को अलग-अलग रंग से सजाने में जो खर्चा होता है, उससे भी कुछ फायदा मिलता है।

ऐसा माना जाता है कि जब पौधे ज़मीन पर आए तो उन्हें कई

खतरनाक परिस्थितियों का सामना करना पड़ा था। पानी में थे तो पानी की कमी नहीं थी। ज़मीन में से पानी सोखने के लिए जुगाड़ जमाने पड़े। धूप तेज़ थी तो उससे बचने के लिए व्यवस्था करनी पड़ी। कई रंजक पौधों को हानिकारक प्रकाश से बचाने का काम करते हैं। पानी में तो यह काम पानी कर देता था।

ऐसा कहते हैं कि फूलों में जो अलग-अलग व्यवस्थाएँ बनी हैं, वे ऐसे जन्तुओं को आकर्षित करने के लिए बनी हैं जो उनके परागकणों को दूसरे फूलों तक पहुँचा दें। इन्हें परागणकर्ता कहते हैं। रंग अलग होगा तो कीटों को, पक्षियों को ये फूल आसानी-से दिख जाएँगे। परागणकर्ता फूलों पर बैठेंगे तो परागकण उनसे चिपककर अन्य फूलों पर पहुँच जाएँगे। लेकिन रंग-बिरंगे फूलों पर वे बैठेंगे तो उन्हें वापिस आने का या उसी रंग के फूलों पर बैठने का कोई कारण भी तो होना चाहिए। तो फूलों में पौष्टिक मकरन्द की व्यवस्था हुई। परागणकर्ता को उसकी मदद के बदले इनाम मिला। तो इन रंगों से फायदा तो हुआ – परागणकर्ता फूलों पर आने लगे। यदि परागकणों को हवा में उड़ाकर दूसरे फूलों पर पहुँचाने का तरीका (वायु परागण) अपनाया जाए, तो बहुत अधिक संख्या में परागकण बनाने पड़ते हैं क्योंकि हवा तो हवा है, आपका किराए का ऑटो तो है नहीं।

रंगों में भिन्नता के फायदे

यही हाल फलों का भी है। पौधों के लिए फलों का कोई महत्व नहीं है – महत्व है उनके अन्दर के बीजों का। फल तो इन बीजों को दूर-दूर तक बिखराने के साधन हैं। सही है, हवा-पानी भी यह काम कर सकते हैं मगर यहाँ भी जन्तुओं की मदद लेना फायदेमन्द होता है। किसी पौधे के फल या बीज ऐसे होते हैं जो जन्तु पर गोंद जैसे पदार्थ की मदद से चिपककर दूर-दूर तक जाते हैं तो कुछ में काँटे होते हैं। कई पौधों में फलों को इस तरह बनाया गया है कि जन्तु उन्हें खाने को लालायित होते हैं और साथ में बीजों को बिखरा देते हैं। इसमें रंग की विशेष भूमिका है। फल यदि अलग रंग का दिखेगा तो जन्तु उन्हें आसानी-से पहचानकर खाएँगे। लेकिन कच्चा फल खिलाकर कोई फायदा नहीं क्योंकि बीज भी तो कच्चे होंगे। वे मंज़िल पर पहुँचकर उगेंगे ही नहीं। इसलिए जन्तु पका फल खाएँ तो काम का है। इसलिए फल पकने पर वह खाने योग्य भी हो जाता है और उसका रंग बदलकर इस बात का ऐलान भी कर देता है कि वह फल अब पक गया है।

तुम देख ही सकती हो कि हरे रंग के पौधे पर बैंगनी भटा आसानी-से दिख जाएगा और लौकी भी बाकी पौधे की तुलने में थोड़ी हल्के रंग की होती है। अब पौधे इतना सोच-

समझकर करते हैं या नहीं, मैं नहीं जानता। वैसे लौकी और भटे में एक बात और है। ये हमारे पालतू हैं, हमने सदियों में इन्हें अपने हिसाब से बदला है। तो शायद प्रकृति से ज़्यादा यहाँ मनुष्य का हाथ है। वैसे बैंगन सिर्फ बैंगनी नहीं होते, हरे-सफेद बैंगन भी होते हैं। एक जगह मैंने यह भी पढ़ा है कि बड़े फल आम तौर पर ज़्यादा रंग-बिरंगे या भड़कीले नहीं होते। कारण स्पष्ट नहीं है लेकिन कहते हैं कि इन्हें खाने वाले जन्तु रंग देखकर इनकी ओर आकर्षित नहीं होते।

तो पता नहीं, जो सवाल था उसका जवाब मिला या नहीं। यदि 6 वर्षीय मानवी मुले आगे बात बढ़ाएगी तो बात बढ़ेगी, नई-नई और बातें निकलेंगी। उसे भी मज़ा आएगा, मुझे भी मज़ा आएगा और बाकी लोगों का मज़ा तो मुफ्त में।

सुशील जोशी: *एकलव्य* द्वारा संचालित स्रोत फीचर सेवा से जुड़े हैं। विज्ञान शिक्षण व लेखन में गहरी रुचि।

इस बार का सवाल

सवाल: फन्नी-प्लास्टिक कैसे बनती है?

- माध्यमिक शाला, मानिकपुर आश्रमशाला, महाराष्ट्र

इस सवाल के बारे में आप क्या सोचते हैं, आपका क्या अनुमान हैं, क्या होता होगा? इस सवाल को लेकर आप जो कुछ भी सोचते हैं, सही-गलत की परवाह किए बिना लिखकर हमें भेज दीजिए। सवाल का जवाब देने वाले पाठकों को *संदर्भ* **की तीन साल की सदस्यता उपहार स्वरूप दी जाएगी।**

RNI No.: MPHIN/2007/20203

प्रकाशक, मुद्रक, अरविन्द सरदाना की ओर से निदेशक एकलव्य फाउण्डेशन, जमनालाल बजाज परिसर, जाटखेड़ी, भोपाल - 462 026 (म.प्र.) द्वारा एकलव्य से प्रकाशित तथा भण्डारी ऑफसेट प्रिंटर्स, ई-3/12, अरेरा कॉलोनी, भोपाल-462 016 (म.प्र.) से मुद्रित, सम्पादक: राजेश खिंदरी।